अध्याय–2

गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई सम्प्रदाय

अध्याय - द्वितीय

गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई सम्प्रदाय

2.0 भूमिका

2.1 गुरु जाम्भोजी का परिचय

2.1.1 जीवन वृत्त 2.1.2 व्यक्तित्व

2.1.3 चिन्तन एवं पंथ

2.1.4 भक्ति आन्दोलन में गुरु जम्भेश्वर जी का अवदान

2.2 बिश्नोई : सम्प्रदाय, समाज और साहित्य

2.2.1 बिश्नोई सम्प्रदाय

2.2.1.1 बिश्नोई सम्प्रदाय

2.2.1.2 मान्यताएँ

2.2.2. बिश्नोई समाज

2.2.2.1 सामाजिक जीवन 2.2.2.2 आर्थिक जीवन

2.2.2.3 सांस्कृतिक जीवन 2.2.2.4 धार्मिक जीवन

2.2.3 बिश्नोई साहित्य

2.2.3.1 कवि एवं काव्य

2.2.3.2 काव्य विकास

2.2.3.3 काव्य प्रकार

2.2.3.4 जाम्भोजी का स्थान एवं महत्त्व

निष्कर्ष

अध्याय - द्वितीय

गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई सम्प्रदाय

2.0 भूमिका - किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माता और निर्धारक दो तत्व होते हैं - एक वंश और दूसरा परिवेश। यहाँ यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जाम्भोजी का व्यक्तित्व दोनों ही कसौटियों पर खरा उतरता है। अर्थात वंश की सादगी, सच्चाई एवं मानव सेवा का जो तत्व जाम्भोजी महाराज को वंश परम्परा के रूप में मिला, महाराज ने उसे कई गुणा बढ़ा कर समाज को अर्पित किया। जहाँ तक परिवेश की बात है तो यह भी स्पष्ट है कि जाम्भोजी का युग विसंगतियों से भरा हुआ था। एक ओर समाज में अंधविश्वासों एवं आडम्बरों का जोर था तो दूसरी ओर अज्ञानता ने देश और समाज को बुरी तरह जकड़ा हुआ था। इन सबके ऊपर राजस्थान का राजनैतिक परिवेश अस्थिरता एवं अहंकार से भरा था। इस पर भी इस्लामी लूट-शोषण एवं संघर्ष में राजस्थान को विशेष आपदाओं से भरा हुआ था। ऐसे में किसी महात्मा का प्रादुर्भाव कोई अतिशयोक्ति नहीं है। जाम्भोजी एक सगुणोन्मुख, निर्गुण संत थे अर्थात उनमें सगुण और निर्गुण दोनों दृष्टियाँ समाहित थी।

2.1 गुरु जाम्भोजी का परिचय

गुरु जाम्भोजी पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी के एक ऐसे संत हैं जिन्होंने भारतीय जीवन के सभी पक्षों को प्रभावित किया। उनका सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक दर्शन आज तक भी भारतीय जीवन को दिशा प्रदान कर रहा है।

2.1.1 जीवन वृत्त - जांभो जी के आविर्भाव के संबंध में बिश्नोई पंथ में मान्यता से प्रचलित है कि 'जब नारायण ने नृसिंहावतार लेकर भक्त प्रह्लाद की रक्षा की थी, उस समय प्रह्लाद ने भगवान से एक वर मांगा था कि वे युग-युग में जीवों के उद्धार के लिए अवतार लें। भगवान ने भक्त को वचन दिया और मत्स्यादि अवतार धारण करने वाले वही भगवान त्रेता में श्री रामचन्द्र, द्वापर में श्री कृष्ण और इसी अनुक्रम से कलियुग में जांभोजी अवतरित हुए।

बिश्नोई पंथ के साहित्य में किंचित हेरफेर से अनेक स्थलों में यह कथा वर्णित हुई है।

'वे बिना छाया-माया के हैं। हाड़-मांस, रक्त और धातु से रहित हैं। उनके न माँ है न बाप। वे तो स्वयंभू हैं।' वे कहते हैं कि "लोग मेरी उत्पत्ति को नहीं जानते। जो इस संबंध में कुछ कहते हैं, वह सब व्यर्थ है।"[1]

जांभो जी अपना अवतारत्व प्रकट करते हुए कहते हैं - "मैंने प्रह्लाद को वचन दिया था, इसलिये मैं अपने वचनानुसार जीवों को सन्मार्ग पर लाने, उन्हें तेतीस कोटि देवों में सम्मिलित करवाने (जीवों को स्वर्गाधिकारी बनाने से आशय) और अपने स्थान से भटके हुए जीवों को यथास्थान पहुंचाने आया।"[2]

जांभोजी के शब्दों के अंत:साक्ष्य से तथा उनके आविर्भाव संबंधी निर्देशनों से उनके माता-पिता, वंश एवं जन्मस्थान, जन्मतिथि आदि का विशेष उल्लेख नहीं मिलता है पर तब भी इतना तो उनसे स्पष्ट ही ज्ञात हो जाता है कि जांभोजी का अवतरण जंबू द्वीप-भरत खंड के मरु प्रदेश स्थित नागौर परगने में हुआ। उस समय दिल्ली पर सिकन्दर (लोदी) राज्य करता था। उनके शब्दों से यह भी ज्ञात हो जाता है कि उस समय यह प्रदेश घोर जंगल था। यद्यपि उस समय भी इस प्रदेश में जनपद थे, किन्तु आज जैसी जन संकुलता उस समय नहीं थी। जांभोजी ने इसी प्रदेश के थली भाग को अति उत्तम जान कर अपना आवास स्थान बनाया। यह उनके अंत:साक्ष्यों से स्पष्ट हो जाता है।

गुरु जम्भेश्वर स्वयं साक्षात् विष्णु के अवतार और दैवीयशक्ति सम्पन्न, आप्तकामी, सिद्धयोगी और दिव्य ज्योति सम्पन्न विष्णु के प्रतिनिधि थे। उनका व्यक्तित्व और कृतित्व स्थानातीत और कालातीत और विश्वात्मा के समक्ष उच्चस्तर का है। वे स्वयं सार्वभौम आत्मा थे। उनकी आत्म-चेतना बहुआयामी थी। वे अलौकिक शक्तिसम्पन्न साक्षात् ईश्वर और सृष्टिकर्ता जगदीश और देवताओं के स्वामी थे। वे सगुण रूप में शरीरधारी सिद्धयोगी और निर्गुण रूप में सार्वभौमसत्ता अव्यक्त और असीम व अनन्तकला विष्णुशक्ति के प्रतीक थे। वे

स्थान और काल से परे थे। ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी उनकी अद्‌भुत लीला और उनकी रहस्यवादी भावना का भेद नहीं पा रहे थे। अर्थात उनकी अद्‌भुत लीला को विश्वकर्मा भी नहीं जानते थे। वे सब प्राणियों में व्याप्त थे। वे योगीजनों के योगीश्वर थे, अवतारों के अवतार थे। परमेश्वरों के परमेश्वर थे। उन्होंने इस सृष्टि को अनादिकाल से देखा था। इसका वर्णन उन्होंने अपनी वाणी में किया है। उन्होंने प्रहलाद पंथ के बारह करोड़ जीवों का उद्धार करके सन् 1485 में बिश्नोई धर्म की स्थापना की थी। गुरु जम्भेश्वर को पूर्णावतार मानने वाले उनके अनुयायी भक्तों में जो धारणा प्रचलित है उनके अनुसार जम्भेश्वर जी का अवतार सन् 1451 की भादो बदी अष्टमी, सोमवार के दिन कृत्तिका नक्षत्र में हुआ था। ध्यान देने की बात यह है कि पूर्ण ब्रह्म के अवतार माने जाने वाले भगवान श्री कृष्ण का जन्म भी भादो बदी अष्टमी को आधी रात में हुआ था। गुरु जम्भेश्वर राजस्थान में जहाँ अवतीर्ण हुए थे वह जोधपुर के पास की नागौर पट्‌टी में पड़ने वाला पीपासर नामक गाँव है। यह गांव नागौर से पैंतालीस किलोमीटर उत्तर में स्थित है। संस्कृत में इस भूभाग को 'सपादलक्ष' कहते हैं, इस भूमि को बागड़देश भी कहते हैं। बागड़िये चौहानों ने इस प्रदेश पर सैंकड़ों वर्षों तक शासन किया था। इसलिए प्रसिद्ध इतिहासकार दशरथ ओझा जी ने "इस प्रदेश को बार-बार बागड़ देश कहा है।"[3]

बिश्नोई सम्प्रदाय के धर्म ग्रंथों के अनुसार जाम्भोजी के पिता लोहट जी अत्यन्त प्रतिष्ठित पंवार घराने के सुसम्पन्न पशुपालक किसान थे। महलाणा गाँव के बिश्नोई भाटों की बहियों के अनुसार, जाम्भोजी विक्रमादित्य की नौंवी पीढ़ी में तथा राजा भोज की उनत्तालीसवीं पीढ़ी में लोहट जी उत्पन्न हुए थे। साधु परम्परा नामक ग्रंथ में आदि विष्णु से लेकर जाम्भोजी तथा उनकी शिष्य-परम्परा तक का समग्र विवरण मिलता है।

वंश परम्परा - कहा जाता है कि जांभोजी के पूर्वज 'हरसोल' (मारवाड़) से आकर इस क्षेत्र में आबाद हुए थे। इनकी एक वंशावली साधु श्री रामदासजी ने 'जंभसार' में 'प्राचीन महात्माओं की वंशावली' नाम से प्रकाशित की है जो इस प्रकार है -

1.	"उदियाचंद	2.	गन्द्रफसेन	3.	विक्रमादित्य	4.	चिलत
5.	अजीत	6.	महीपाल	7.	सेंदलसैन	8.	भोज
9.	सहदेव	10.	माययचंद	11.	महीचंद	12.	कुलचंद
13.	कालू	14.	बरड़	15.	तांतल	16.	हरीसेन शांतल
17.	शांवल	18.	थेलप	19.	जालप	20.	सेतराम
21.	रोलोजी	22.	लोहटजी"[4]				

इसी प्रकार की एक दूसरी वंशावली भी उपलब्ध होती है जिसमें भी उदियाचंद से आरंभ होने वाले लोहटजी तक के नामों में कोई अंतर नहीं है।

जिस प्रकार उस समय मरुधरा पर छोटे-छोटे ठिकानों के रूप में जाटों, जोहियों, सांखलों आदि जातियों का अधिकार था, उसी प्रकार जांभोजी के पूर्वजों का 'पीपासर' पर स्वामित्व था।

पीपासर, नागौर (राजस्थान) जिले में है। यह ग्राम नागौर शहर से सोलह कोस उत्तर में ऊंचे-ऊंचे धोरों के बीच में बसा हुआ हैं पीपासर कब बसा और किसने बसाया, नहीं कहा जा सकता, परन्तु रोलोजी के नाम से पंवार क्षत्रिय अनुमानत: चौदहवीं शताब्दी के अंत अथवा पन्द्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में पीपासर में निवास करते थे।

जाम्भो जी का जन्म वि. सं. 1508 भाद्र कृष्णा अष्टमी सोमवार की अर्द्धरात्रि में हुआ था। माता हांसा रात्रि के समय स्वप्नावस्था में अर्द्धोन्मीलित नेत्रों से सो रही थी, नेत्र खुलने पर जब उसने अपने सामने बालक देखा तो वे प्रसन्नता से विहंस उठी।

लोहटजी को पुत्र जन्म का शुभ संवाद - जांभोजी के जन्म का शुभ समाचार लोहटजी को तब प्राप्त हुआ जब वे ब्रह्ममुर्हूत में, अपने ठाकुरद्वारे में परमेश्वर का ध्यान कर रहे थे। पुत्र जन्म का शुभ समाचार सुनकर लोहटजी के आनन्द का कोई पार नहीं रहा। उन्होंने बालक को अपने

हृदय से लगाया और अपार आनन्द का अनुभव किया। 'जांभाणी साहित्य'' में ऐसे स्थलों के सुंदर वर्णन मिलते हैं।

नामकरण संस्कार - दस दिन बाद आलक का नामकरण संस्कार हुआ। 'श्री जम्भदेव चरित्र भानु' के अनुसार ब्राह्मण ने बालक का नाम 'जंभराज' रखा। जांभोजी के अनेक नामरूप तथा नाम विशेषण प्राप्त होते हैं तथा इस नाम की विद्वानों ने कई प्रकार से व्युत्पत्ति की है।

बाल्यकाल - जांभोजी जन्म से ही अद्‌भुत चरित्र थे। उनके शैशवकाल के आश्चर्यजनक चरित्रों का उल्लेख बिश्नोई पंथ के साहित्य में बड़े विस्तार के साथ हुआ है। उदाहरणार्थ - जच्चा गृह से अदृश्य होना, पुनः प्रकट होना, अन्न-जल एवं दुग्धादि का पान न करना और अपने शरीर को इतना बोझिल बना लेना कि उठाये भी न उठना। कर्ण-छेदन संस्कार पर कानों में बाली तथा धागे का न ठहरना। यज्ञोपवीत संस्कार पर गले से जनेऊ का नीचे गिर जाना। अध्यापक के सामने शास्त्रों का वाचन करना आदि। डॉ. सुरेन्द्र कुमार के अनुसार 'उनकी इन लीलाओं का वर्णन वील्होजी, केसोजी, सुरजनजी, साहब रामजी ने विस्तार से एवं ज्ञात, अज्ञात कवियों ने साखी-हरजसों में सांकेतिक तौर पर किया है।'[5]

जन्मजात अवधूत - जाम्भोजी जन्मजात अवधूत थे। उन्हें बाल्यकाल से ही कपड़े तथा आभूषण पहनना पसंद नहीं था। पिता के चाहने पर भी वे इस ओर से उदासीन थे। लेकिन जांभो जी के चित्त में इस प्रकार की साधारण तथा लौकिक बातें स्थिर नहीं हो पाती थी। जांभो जी जन्म से ही योगी थे। वे सहज समाधि में ध्यानावस्थित रहते थे। जब वे गायें चराने जाते थे तब अनेकों बार रात्रि को जंगल में रह जाते थे। 'सांखलों का धोरा' और समराथल धोरा' उनके प्रिय स्थान थे। कई बार वे महीनों घर से बाहर निर्जन व गुप्त स्थानों में चले जाते थे। जंभसार में ऐसे अनेक चरित्रों का संकलन हुआ है।

माता जी जांभोजी का विवाह प्रसंग - जांभोजी की माता ने उनका विवाह करना चाहा किन्तु उन्हें यह कब स्वीकार था? उनका तो मार्ग ही भिन्न था। वह परमार्थ का मार्ग था,

जिसके वे पथिक थे। उन्हें तो ऐसे तख्त की रचना करनी थी जिसके शाासन में धर्म, समता और सदाचार की प्रधानता हो। उनका धरती पर आगमन ही इसी उद्देश्य से हुआ है।

जांभोजी ने आजन्म ब्रह्मचारी रहकर परमार्थ मार्ग को प्रशस्त किया। जिस उद्देश्य से इस विभूति का उदय हुआ था, उस लक्ष्य की ओर वह निरंतर अग्रसर रही। जांभोजी भूख-प्यास से रहित, मैड़ी-मंडप, कोट, घर और माया से रहित, वृक्षों के नीचे विश्राम करने वाले परमहंस वृत्ति के थे। ऐसी वृत्ति वाले भला विवाह आदि के सांसारिक बंधनों से कैसे बंधते?

जांभोजी का गोचारण - जांभोजी के जीवन के सात वर्ष बाल-लीला में व्यतीत हुए। उसके बाद उन्होंने सत्ताईस वर्ष तक गोचारण किया। उनकी वाणी से 'छाळ', 'टाट' और गौओं का चराना ज्ञात होता है। उन्होंने एक स्थल पर कहा है, 'जहां मैंने जन्म लिया है वहां गाय बहुत होती हैं।'[6] जांभाणी साहित्य में जांभोजी को 'पशुवां परमेश्वर' तथा 'जंभा गोरक्षा अवतार' जैसे विशेषणों से विभूषित किया गया है जो उनके गौ आदि पशु प्रेम के द्योतक हैं। जांभो जी के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे जितने पशुओं को कुएं पर पानी पीने की आज्ञा देते थे, उतने ही पशु खेली में पानी पीने जाते थे।

जांभोजी की मौनावस्था - जांभोजी के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वे अपने जीवन में एक लंबे समय तक मौन रहे। किन्तु इस संबंध में यह मतैक्य नहीं है कि वे किस समय तक मौन रहे और किस उम्र में उन्होंने बोलना आरम्भ किया।

पूर्व का मौन उनका साधना-काल था। जो उन्हें संचय करना था, पाना था और जिस भाव-स्थिति में उन्हें स्थिर होना था, जो चिंत्य था और जो चिरंतन था वह उन्होंने अपने 34 वर्ष के सुदीर्घ जीवन काल में भली-भांति से पा लिया था।

जांभो जी के पिता उनकी इस प्रकार मौन तथा अवधूत वृत्ति को रोग-जन्य जानकर बड़े ही चिंतित रहते थे। उन्होंने अपने पुत्र को प्रकृतिस्थ एवं स्वस्थ करने के अनेक उपाय किये किन्तु जांभोजी के सामने वे सब प्रयत्न विफल ही हुए। लेकिन पिता तो अब भी

आशावादी थे। उनकी एकमात्र इच्छा थी कि किसी भी उपाय से उनका पुत्र स्वस्थ हो एवं बोलने लग जाय। अतएव इस ओर उनके प्रयत्न अब भी चालू थे।

जांभोजी का गृह-त्याग - जांभोजी ने 32 वर्ष की अवस्था में पूर्ण रूप से घरबार को त्याग दिया और अपने ग्राम पींपासर से चार कोस उत्तर में स्थित ''समराथल धोरे'' पर जा बिराजे तथा लोगों को उपदेश देने लगे। लोक-कल्याण की भावना से अनुप्राणित होकर ही जांभोजी आदि आसन ''समराथल'' पर आसनस्थ हुए। उनकी भावनाओं में जो धर्म-स्थापना का स्वप्न था, उसको वे मूर्तरूप देना चाहते थे। आज से पूर्व उनकी महानता स्वयं में छिपी हुई थी। लोग उन्हें मूर्त तथा लौकिक व्यवहार से शून्य समझते थे। परन्तु अब वह समय आ गया था जिसमें उन्हें अपनी महानता को प्रकट करना आवश्यक हो गया था।

अकाल पीड़ितों की सहायता - वि.सं. 1542 में इस क्षेत्र में भयंकर अकाल पड़ा। 'जांभाणी साहित्य' में इस अकाल का विस्तार के साथ उल्लेख हुआ है। किन्तु इस वर्ष का अकाल भयंकर था। जांभोजी ने इस भयंकर अकाल की घड़ियों में भूखी जनता को प्रत्येक संभव सहयोग दिया। 'जंभसार' कथाओं के अनुसार जांभोजी ने गांव-गांव में भ्रमणकर लोगों की स्थिति का ज्ञान किया तथा उनसे पूछा कि 'आगे उन्होंने जीवन-निर्वाह के संबंध में क्या सोचा है?'

लोगों के सामने दुर्भिक्ष से बचने का एक ही उपाय था। वह था, अपना देश, ग्राम एवं घर-द्वार छोड़कर उदर पूर्ति हेतु 'मऊ-मालवे' की ओर जाना।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने लिखा है कि अकाल पीड़ित जन-समुदाय 'समराथल धोरे' के पास से 'मऊ-मालवे' की ओर जा रहा था। जनता के इस सामूहिक निष्क्रमण को देखकर जांभोजी का हृदय द्रवित हो उठा। उन्होंने उस विशाल जन-समुदाय को अपने पास बुलाया और उनसे कहा 'यदि तुम्हें यहीं खाने को मिलता रहे तो क्या 'मऊ-मालवू' जाना स्थगित कर दिया जायेगा?'

लोगों का उत्तर था - 'स्वांस और वास (निवास) बड़ी मुश्किल से छूटता है। यदि

यहीं भूख से बचने का कोई उपाय हो जाये तो फिर हमें बाहर जाने की आवश्यकता नहीं।' पर लोगों के मन इस बात से शंकाकुल थे कि इतने लोगों के लिये अन्न की व्यवस्था कैसे होगी? तथा आगामी वर्ष में वर्षा होने के उपरांत खेती का सामान, बीज और नई फसल के पकने तक जीवन निर्वाह के लिय अन्न कहां से आयेगा?

जांभोजी ने उन लोगों को दृढ़ता के साथ आश्वासन देते हुए उनकी शंकाओं का निराकरण किया और कहा - 'यदि तुमने निष्क्रमण रोक दिया तथा मेरे उपदेश के अनुकूल आचरण किया तो चाहे कितने ही मनुष्य हों, सबको खाने को अन्न और आगामी वर्ष के लिये खेती बोने का सामान दिया जायेगा।' लोगों ने भी जांभोजी की बात मान ली। समराथल पर उनकी छत्र-छाया में लोग पलते रहे।

जांभोजी का निर्वाण -

जांभो जी का महापरिनिर्वाण वि. सं. 1593 मार्ग शीर्ष कृष्णा 9 को 85 वर्ष 3 महीने 10 दिन की अवस्था में हुआ। जांभाणी साहित्य में इसी निर्वाण तिथि का सर्वत्र उल्लेख हुआ है। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इनका निर्वाण वि.सं. 1580 के लगभग एवं श्री ओझाजी ने संवत् 1583 लिखा है जो गलत है। जंभसार में लिखा है - ब्रह्म स्वरूप जंभगुरु वही है जिन्होंने पच्चासी वर्ष तक अपने शरीर को अन्नजल के बिना रखा। जंभसार में एक दूसरे स्थल पर लिखा है, 'जांभोजी जब पच्चासी वर्ष के हुए तब वे अपनी शिष्य मंडली सहित पीपासर आये और वहां एक धोरे पर बैठ गये। जांभाणी ग्रंथों में प्राय: ऐसा लिखा हुआ मिलता है कि निर्वाण से पूर्व, जांभोजी के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि जिस सद्धर्म प्रचार हेतु इस शरीर को धारण किया था उन सबके संपन्न होने के पश्चात अब इस शरीर की कोई सार्थकता नहीं।

इस संकल्प के साथ ही उनकी इहलीला समाप्त करने की इच्छा हुई और वे बीकानेर प्रदेश के लालासर ग्राम के जंगल में एक स्वच्छ 'धोरे' पर कंकेड़ी वृक्ष के नीचे समाधिस्थ हो, ब्रह्मलीन हो गये। जिस समय जांभोजी का निर्वाण हुआ था, उस समय उनके अधिकारी

शिष्य रणधीर जी, रेड़ा जी, निहालदासजी आदि 'हजूरी संत' भक्त एवं अनेक अनुयायी उनके पास उपस्थित थे। उस समय कालपी से भी अनेक भक्तों तथा अनुयायियों के आने का उल्लेख मिलता है। जिनमें से अनेक भक्त, भक्ति-विह्वल होकर जांभोजी के साथ स्वर्गारोहण कर गये। साखीकार कहता है कि जिस समय जांभोजी का देहावसान हुआ था उस समय चारों ओर अंधेरा छा गया। जांभोजी का आदेश (वसीयत) था कि उनका अंत्येष्टि संस्कार 'जांभोलवाव' (फलोदी-जोधपुर) पर किया जावे। इसके लिये पूर्व से ही वहां 'समाधि-कुंड' बनवा लिया गया था। परन्तु ऐसा न हो सका और फिर बीकानेर राज्य के 'तालवे' नामक स्थान में समाधिा दे दी गई। यह स्थान ही 'मुकाम' नाम से प्रसिद्ध हुआ जहाँ आज एक विशाल मन्दिर भी है।

पंथ स्थापना - जांभोजी ने 34 वर्ष की आयु में बिश्नोई पंथ की स्थापना वि.सं. 1542 कार्तिक कृष्णा अष्टमी को अपने आदि आसन 'समराथल धोरे' पर की। जंभसार आदि ग्रंथों में भी पंथ स्थापना के दिन अष्टमी तिथि होने का उल्लेख मिलता है। यह अष्टमी पंथ-स्थापना की समारंभ तिथि थी। इस दिन से लेकर अमावस्या तक चारों वर्णों का बिश्नोई पंथ में दीक्षा समारोह मनाया जाता रहा। कहा जाता है कि कार्तिक कृष्णा सोमवती अमावस्या थी तथा उस दिन विशाखा नक्षत्र थ। इस हिसाब से पंथ के समारंभ दिवस अष्टमी को भी सोमवार ही था। जांभो जी ने पंथ-स्थापन की मंगलविधि में यज्ञवेदी को प्रज्वलित किया।

जांभोजी ने अपने मत का नाम 'बिश्नोई पंथ' रखा। उन्होंने सर्वप्रथम पंथ-स्थापना के प्रतीक रूप में कलश की स्थापना की और दीक्षार्थियों को, उसके समीप बैठाकर मंत्र का जाप (उच्चारण) करवाया। कलश स्थापन एवं यज्ञ के आरम्भ होने के उपरान्त जांभोजी ने जल को अभिमंत्रित कर 'पाहल' बनाया और इसी पवित्र जल 'पाहल' को पिलाकर अपने शिष्य समुदाय को बिश्नोई पंथ में दीक्षित किया।

सर्वप्रथम पूल्होजी को पंथ में दीक्षित करना - जांभोजी ने सर्वप्रथम अपने चाचा पूल्होजी को 'पाहल' पिलाकर बिश्नोई पंथ में दीक्षित किया। दीक्षित होने से पूर्व पूल्होजी ने जांभोजी

से निवेदन किया कि ''यद्यपि मैं आपका संबंधी हूँ तथा आपकी शरणागत हूँ फिर भी बिना किसी 'परचे' (चमत्कार) के आपके मार्ग में मेरा विश्वास स्थिर नहीं होता। जांभो जी ने पूल्होजी को परचा दिखाना स्वीकार कर लिया, पर साथ ही उनसे यह वचन भी ले लिये कि परचा मिलने पर उनके बताये मार्ग को उन्हें स्वीकार करना होगा। इस प्रकार वचनबद्ध होने पर पूल्होजी को जांभोजी ने अपेक्षित परचा दिया। परचा पाकर पूल्होजी को जांभोजी की सामर्थ्य एवं उन द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर पूर्ण विश्वास हो गया तथा वे सर्वप्रथम बिश्नोई पंथ में दीक्षित हुए। इस प्रकार अलौकिक परचा पाकर पूल्होजी के दीक्षित होने के बाद पंथ निःशंक भाव से चल पड़ा।

पंथ संचालन हेतु अनुशासन - पंथ-स्थापना के बाद जांभोजी ने पंथ के सुचारू रूप से चलने के लिये अपना विशिष्ट अनुशासन स्थापित किया जो निम्न प्रकार है -

1. ''सर्वप्रथम 29 धर्म नियमों का प्रतिपादन किया।
2. बिश्नोई पंथ में 'पाहल' पान के अनंतर ही कोई प्रवेश पा सकता है।
3. जांभोजी ने बिश्नोई समाज के लिये पुरोहित स्थानी 'थापन' की नियुक्ति की।
4. यति आश्रम की स्थापना की।
5. समाज की वंशावली एवं विवाहादि उत्सवों पर गान कीर्तन के लिये एक अलग 'गायणा' वर्ग की स्थापना की।
6. अपने बिश्नोई पंथानुयायियों के लिए अन्यों के हाथ का बना तथा स्पर्श किया भोजन न करने की आज्ञा दी। अधिकांश बिश्नोई आज भी किसी के हाथ का भोजन नहीं करते। 'पाहल' लेकर बिश्नोई बनने के बाद पूर्व-जाति-वर्ण का तिरोधान हो जाता है, वह बिश्नोई नाम से ही अभिहित किया जाता है। वैवाहिक संबंध बिश्नोइयों का बिश्नोइयों में ही होता है।''[7] श्री जम्भदेव चरित्र भानु में उन जातियों की सूची प्रकाशित हुई है जिन्होंने उस समय जांभोजी से बिश्नोई धर्म की दीक्षा ली थी।

धर्म नियम - ये 29 नियम हैं जिनकी पालना से आचार-विचार में शुद्धता आती है -

1. "तीस दिन तक सूतक रखना।
2. पांच दिन तक रजस्वला स्त्री को गृह कार्यों से अलग रखना।
3. प्रातः काल स्नान करना।
4. शील, संतोष व शुद्धि रखना।
5. द्विकाल सन्ध्या करना।
6. सायं को आरती करना।
7. प्रातःकाल हवन करना।
8. पानी, दूध, ईन्धन को छान-बीन कर प्रयोग में लेना।
9. वाणी सोच विचार कर शुद्ध बोलें।
10. क्षमा (सहनशीलता) रखें।
11. दया (नम्रता) रखें।
12. चोरी नहीं करना।
13. निन्दा नहीं करना।
14. झूठ नहीं बोलना।
15. वाद-विवाद नहीं करना।
16. अमावस्या का व्रत रखना।
17. विष्णु का भजन करना।
18. जीवों पर दया करना।
19. हरे वृक्ष नहीं काटना।
20. काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार आदि अजरों को वश में करना।
21. अपने हाथ से रसोई बनाना।
22. थाट अमर रखना।
23. बैल को बधिया न करना।

24. अमल (अफीम) नहीं खाना।

25. तम्बाखू खाना-पीना नहीं।

26. भांग नहीं खाना।

27. मद्यपान नहीं करना।

28. मांस नहीं खाना।

29. नीले वस्त्र नहीं पहनना।''[8]

उपरोक्त नियम वर्तमान में भी बिश्नोई समाज में ये इसी क्रम में प्रचलित हैं और सर्वमान्य हैं।

शिष्य -जांभोजी पंथ-संस्थापक, धर्म-नियामक एवं समाज-सुधारक थे, इसलिये उनका शिष्य समाज भी वृहत् तथा विस्तृत था। उन्होंने अपने धर्म प्रचार के हेतु दूर-दूर तक की यात्रायें की थी। उनका आदर्शपूर्ण एवं आध्यात्मिक जीवन और अमृतमय उपदेश इतना प्रभावशाली था कि उससे प्रभावित होकर प्रत्येक वर्ग का व्यक्ति उनका पंथानुयायी व शिष्य बना।

''जांभोजी का पंथ केवल साधु-संप्रदाय नहीं था, अपितु उनके पंथ का मूलाधार गृहस्थ समाज ही था। अतएव उनके गृहस्थ और विरक्त दोनों प्रकार के शिष्य थे। अनेक परिवारों तथा व्यक्तियों ने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर अपने जीवन को उपकृत किया था।''[9]

जंभसार में ऐसी बहुत सी कथायें हैं, जिनमें बिश्नोई पंथ में दीक्षित होने वाली जातियों, 'जाति मुखियों' और व्यक्तियों का बड़े विस्तार के साथ उल्लेख हुआ है। जिस जाति, समुदाय व व्यक्ति ने उनके उपदिष्ट धर्म को स्वीकार किया वह उनका शिष्य माना गया।

'वील्होजी के जीवन चरित्र' में लिखा है कि ''सद्धर्म संस्थापक भगवान जंभदेवजी के पन्द्रह सौ साधु शिष्य थे। संभवत: यह संख्या उन द्वारा संन्यस्त हुए शिष्यों की हो, जिन्होंने जांभोजी के सान्निध्य में आध्यात्मिक जीवन का उत्कर्ष प्राप्त किया।

इस प्रकार की शिष्य मंडली के अतिरिक्त तप:पूत जांभोजी के सामने बड़े-बड़े पंडित,

काजी, मुल्ला आदि भी नत-मस्तक होते थे। अनेक ऐसे भी उनके शिष्य थे जो प्रारंभ में उनसे द्वेष एवं प्रतिद्वंद्विता रखने वाले थे, जिनमें नाथपंथी लोहापांगल, लक्ष्मणनाथ, लोहाजड़ पीतलजड़, मृगीनाथ तथा हाली-पाली के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त दिल्ली का बादशाह सिकंदर लोदी, नागौर का शासक मुहम्मद खान, जैसलमेर रावल जैतसी, जोधपुर राव शांतल, उदयपुर राणा सांगा आदि अनेक राजा भी जांभोजी के सिद्धि-परिचय एवं ज्ञानोपदेश से सदाचारी तथा उनके आज्ञानुवर्ती बने। रायसल, बरसल, राव दूदा, राव बीका, शेखसद्दू, हारणाखां, मल्लूखान आदि नामों का उल्लेख भी जांभाणी साहित्य में हुआ है जो जांभोजी को अपना गुरु मानते थे। स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने जोधपुर के संस्थापक राव जोधाजी, मालदेव, यज्ञेश्वर शर्मा, पं. मूलराज, झालीरानी, बौद्ध संन्यासी चन्द्रपाल आदि के जांभोजी के शिष्य बनने एवं उनसे भेंट करने का उल्लेख किया है।

'जंभसार कथाओं' के अनुसार समुद्र पार के राजाओं ने भी जांभोजी का शिष्यत्व ग्रहण किया था। ईरान का बादशाह तो उनसे इतना प्रभावित हुआ कि उसने जांभोजी के चरणों में 'एक लाख पट्टे की जागीरी' का 'परवाना' लिखकर रख दिया। जांभोजी के भ्रमणकाल में काबुल के निवासी सुखन खान, सेफन अली, हसन अली और मुलतान के नवाब उनके बड़े ही भक्त एवं शिष्य बन गये थे।

क्षत्रियों की बीस जातियों ने जांभोजी का शिष्यत्व तथा उन द्वारा प्रतिपादित उन्तीस धर्म-नियमों को अंगीकृत किया। 'पूरबिये ब्राह्मणो' में से जांभोजी के इतने शिष्य हुए कि उनके त्यागे हुए यज्ञोपवीत का सवा मन वजन हुआ। आज भी उस वंश के लोग अपने को ''जम्भैया'' कहलाने में गौरव का अनुभव करते हैं। वैश्य जाति के गर्ग आदि और ब्राह्मण जाति के मुद्गल आदि तेरह गोत्रों ने जांभोजी का शिष्यत्व स्वीकार किया। आज भी देश के कई भागो में विशेषकर उत्तर प्रदेश के बिजनौर, बरेली व मुरादाबाद जिलों में इनकी शिष्य परम्परा के लोग हैं, जो 'अग्रवाल बिश्नोई' या 'बिस्नी बनिये' (बनिया बिश्नोई) कहलाते हैं।

जांभोजी अपने समय में ही अवतार एवं महापुरुष माने जाने लगे थे। रंक से लेकर राजा तक उनकी योग सिद्धि तथा महानता के कायल थे, जिनमें अनेक व्यक्ति ऐसे थे जो जांभोजी के सिद्धि-चमत्कार, रोग-मुक्ति, राज्य-वरदान आदि कारणों से उनके शिष्य और भक्त बन गये थे।

जांभोजी की यात्राएं - जांभोजी का प्रमुख कार्यक्षेत्र यद्यपि राजस्थान ही रहा तथापि उन्होंने बाहर भी देश-विदेशों में भ्रमण कर, अपने सिद्धान्तों का प्रचार किया। जांभोजी ने शुक्लहंस शब्द से उनके विभिन्न स्थानों की यात्रा करने का पता चलता है। इसके अतिरिक्त जंभसार आदि ग्रंथों में उनके देश-देशान्तरों की यात्रा करने का विस्तृत वर्णन हुआ है।

स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने जांभोजी के तीन बार देशाटन करने का उल्लेख किया है। पंजाब, हांसी, हिसार, मलेरकोटला, लाहौर, मुलतान, अफगानिस्तान, असम, कर्नाटक, बंगाल, काशी, नगीना, कश्मीर, गोरखहटड़ी, बराड़, कन्नौज, आगरा, अवध, रुहेलखंड, आंवला, लोदीपुर (मुरादाबाद), सलेमपुर, शिवहरे, खरड़, सरधना, सौंहजनी आदि स्थानों के अतिरिक्त दिल्ली, अलवर, आमेर, जोधपुर, जैसलमेर, चित्तौड़, अजमेर आदि स्थानों की यात्रा करने का विस्तृत वर्णन मिलता है। स्वामी ब्रह्मानन्दजी ने जांभोजी के भारत-भ्रमण के अतिरिक्त इटली, फ्रांस, सिंहलद्वीप आदि विदेशों के भ्रमण का भी उल्लेख किया है। जांभाणी साहित्य में उनके काबुल एवं ईरान जाने के उल्लेख हुए हैं।

जांभोजी की वाणी की भाषा, जिसमें कई प्रांतीय भाषाओं के शब्दों का प्रयोग हुआ है तथा अनेक व्यक्तियों से मिलने के संबंध में प्रचलित कुछ ऐसे आधार हैं जिनसे उनका विस्तृत देशाटन करना सिद्ध होता है।

उपकार कार्य - जांभोजी का समस्त जीवन लोक-उपकार में लगा रहा। उनके उपकारों को संख्या में बांधना अथवा गिनाना सरल भी नहीं है। वे स्वयं उपकार रूप थे। उनके जीवन का समस्त कार्य-व्यापार प्राणियों के हितार्थ एवं परमार्थ की साधना में संलग्न था। उपकारों की इसी महत्ता में यहां जांभोजी के कतिपय औपकारिक कार्यों का दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है -

1. जांभोजी ने जैसलमेर जाते समय 'नन्देऊ' ग्राम से कुछ आगे एक 'ताल' (पक्की समतल भूमि) देखा था। उन्हें यह भूमि तालाब बनाने के बहुत ही उपयुक्त जान पड़ी। इसी स्थान पर उन्होंने तालाब बनवाना आरंभ किया जो वि.सं. 1566 में सम्पूर्ण हुआ और वह 'जंभ सरोवर' अथवा 'जांभोलाव' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

2. सौंहजनी (मुजफ्फरनगर) नाम के ग्राम में भी जांभोजी ने एक तालाब बनवाया था।

3. इसके अतिरिक्त जांभोजी द्वारा मीठे पानी के कूप निर्माण के लिये उपयुक्त भूमि बताना, पुराने कुओं का पुनर्निर्माण करवाना आदि उपकार भी लोक प्रसिद्ध हैं।

4. जांभोजी जिस प्रकार अपने सदुपदेश, जीवनादर्श तथा विविध यौगिक सिद्धि-परिचय द्वारा जनसमुदाय को धर्म मार्ग पर स्थित करते थे उसी प्रकार से समय-समय पर भक्ति का प्रभाव दिखाकर भक्तों की कामना पूरी करने का भी प्रयत्न करते थे।

5. जांभोजी ने वैसे तो वनस्पति रक्षा पर अधिक बल दिया ही है पर खेजड़ी को उन्होंने अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। यही कारण है कि बिश्नोई पंथ में खेजड़ी वृक्ष कलियुग की तुलसी मानी जाती है।

6. इसी प्रकार लोदीपुर वासियों की प्रार्थना पर वहां भी जांभोजी ने खेजड़ी का पेड़ लगाया। आज भी यह खेजड़ी वृक्ष इस घटना के साक्षी के रूप में मौजूद है।

जीवन के विविध प्रसंग -

महापुरुषों, सिद्धों एवं सन्तों का जीवन विविध विचित्रताओं से भरा रहता है। कहीं वे जन-जन द्वारा आदरणीय एवं संपूज्य होते हैं तो कहीं उनके विकट विरोधी छदम रूप से उनका अनिष्ट करने की सोचते हैं। जांभोजी को भी अपने जीवन में, अनेक स्थलों पर विरोधों का सामना करना पड़ा है। परन्तु संतों तथा धर्म-प्रचारकों ने अपने विरुद्ध किसी की ओर से अत्याचार होने पर, उसका निर्भीकता से सामना किया है। वे किसी भी स्थिति में अपने कर्तव्य-कर्म से विचलित नहीं हुए। उनकी कर्तव्य-दृढ़ता के सामने अन्याय करने वाली

शक्तियाँ स्वत: ही नष्ट हो जाती हैं।

जांभोजी भी यदि अपने योगबल तथा आत्मज्ञान से निर्भीक न बन गये होते तो निश्चय ही विरोधी शक्तियां अपने कार्य में सफल होती किन्तु योगबल एवं आत्मज्ञान की बदौलत वे अतीव निर्भीक बने रहे। उन्होंने दुष्टों को सन्मार्ग पर लगाया एवं लोकैषणाओं का वास्तविक बोध करवाकर सच्चे मार्ग का पथिक बनाया। जांभोजी के जीवन के कुछ एतद्विषयक प्रसंग यहां विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं :-

1. **सैंसा की दानशीलता की परीक्षा** - सैंसा नाथूसर (बीकानेर) ग्राम का निवासी था। वह जांभोजी का मतानुयायी था। लोक में इसकी दानी के रूप में प्रसिद्धि थी। यह जब कभी जांभोजी के पास आता अपनी दानशीलता का वर्णन करना। एक दिन जांभोजी वेष बदलकर इसकी परीक्षा करने इसके घर गये। वह शीतकाल का समय था।

जांभोजी ने सैंसा के घर पहुंचकर अलख-अलख की आवाज लगाई पर किसी ने उनकी अलख पर ध्यान नहीं दिया। परन्तु जांभोजी भिक्षा प्राप्ति के लिये बार-बार अलख-अलख की रट लगाते रहे। जांभोजी के बार-बार भिक्षा देने की मांग करने पर 'बासी दलिया' उन्हें दिया गया तथा वस्त्र मांगने पर घर के किसी सदस्य ने उन्हें एक जोरों का धक्का दिया जिससे उनके भींत से टकराने पर उनका भिक्षापात्र खंडित हो गया। जांभोजी को आज सैंसा की पूर्ण परीक्षा करनी थी अत: वे तिरस्कृत होने पर भी "छोटा-मोटा वस्त्र दे" की मांग करते ही रहे। अंत में सैंसा ने भिखारी से तंग आकर एक जीर्ण-शीर्ण वस्त्र उसे दिया। इस प्रकार सैंसा की परीक्षा कर जांभोजी अपने आसन बगरा वाले धोरा पर आ गये। दूसरे दिन जब सैंसा जांभोजी के पास आये तो उन्होंने वह वस्त्र और धक्का देने से टूटे हुए उस पात्र को दिखाया। ऐसा कर जांभोजी ने उसके घमंड को चूर किया और उसे सही मार्ग पर अग्रसर किया।

2. **बाजा को उपदेश** - बाजा भी सैंसा की भांति जांभोजी का भक्त था। वह जसरासर (बीकानेर) का निवासी था तथा तरड़ गोत्री जाट था। उसने अपनी जाति में प्रचलित पद्धति

के अनुसार न्याति भोज किया। न्याति भोज के पश्चात वह जांभोजी के पास आकर पूछने लगा कि उनकी सम्मति में उसका यह कार्य कैसा रहा।

जांभोजी की दृष्टि में ऐसे दिखावेपूर्ण कार्यों का कोई महत्व नहीं था जिस काम में वनस्पति का संहार हो तथा पात्र-अपात्र का विचार किये बिना दान दिया गया हो, ऐसे कार्यों की जांभोजी प्रशंसा करने वाले नहीं थे।

जांभोजी ने उसके न्याति भोज को दोषपूर्ण ही बतलाया जिससे उसको पहले तो बड़ी खिन्नता हुई पर शीघ्र ही वह उनके आशय को समझ गया। उसने एक दूसरे यज्ञ का आयोजन किया जिसमें उसने जांभोजी को सादर आमंत्रित किया तथा उनके आदेशानुसार ही सब कार्यों को सम्पन्न करने का निश्चय किया।

3. **उदा-अतली** - जांभोजी ने जिस प्रकार सैंसा आदि भक्तों की परीक्षा ली थी उसी प्रकार उन्होंने अपने भक्त "उदा-अतली" की भी परीक्षा ली थी। पर ये दोनों दम्पत्ति महाभाग बड़े ही भक्त पुरुष थे अत: वे परीक्षा में भी सफल हुए।

4. **ब्राह्मणों की चिढ़** - श्रीजम्भदेव चरित्रभानु में लिखा है "जांभोजी के मत से प्राय: ब्राह्मण लोग चिढ़ते थे।" उन्होंने तात्कालिक राजाओं से भी इस बात की शिकायत की थी। "जांभोजी अपना नया पंथ चला रहे हैं। वे देवी-देवताओं की अवमानना तथा उनकी पूजा का निषेध करते हैं। समय रहते कोई उपाय नहीं किया गया तो सब लोग उनके अनुयायी हो जायेंगे।" ब्राह्मणों को उनके नया पंथ चलाने के कारण उनसे चिढ़ थी।

5. **चारणी का प्रसंग** - एक चारण जाति की स्त्री जांभोजी के सामने उपस्थित होकर कहने लगी कि आप मुझे एक ऊंट दिलवा दें, मैं आपके यश का बाजा दूर-दूर तक बजा दूंगी। उसने थोड़ा देकर बहुत लेने की कामना से अपने गले की "हंसली" (आभूषण विशेष) भी जांभोजी को भेंट की। कहा जाता है कि इस प्रसंग में जांभोजी ने चारणी के प्रति इक्कीस की संख्या वाला शब्द कहा था।

6. **शास्त्रार्थ** - जांभोजी के पास संभराथल में आए भीमजी नाम के व्यक्ति से उनका शास्त्रार्थ हुआ था। गंगाणी (मारवाड़) के जैनी लोगों से भी उनका शास्त्रार्थ होना ज्ञात होता है। जांभोजी ने जैनियों को शास्त्रार्थ में परास्त कर उनको अपने बिश्नोई मत में दीक्षित कर लिया था। पं. लेखराम ने उल्लेख किया है कि दिल्ली के पास श्री जंभदेव ने बड़े-बड़े मौलवियों से शास्त्रार्थ करके उन्हें वैदिक धर्म की ओर आकर्षित किया।

इसी प्रकार विविध प्रश्न करने वाले व्यक्तियों को समुचित उत्तर देकर उनकी विपरीत धारणाओं को भी उन्होंने समाप्त किया था जिनमें उद्धरण कान्हावत, नागौर का रामू सुराणा, दीपचंद सुनार, योगी, गुसाई, वैरागी आदि जमातधारी साधु आदि के समुदाय विशेष उल्लेखनीय हैं।

बिश्नोई पंथ की प्रमुख साथरी -

महापुरुष जिन स्थानों पर अपने पावन चरण रखते हैं वे तीर्थ सदृश पवित्र हो जाते हैं एवं उनका गौरव 'धरा-धाम' के रूप में आंका जाता है। ऐसे धाम भारतीय संस्कृति में नैतिक प्रेरणा के प्रतीक माने जाते हैं। वे मानव-मिलन की सहज भूमिका का निर्वाह करते हैं, जैसा कि ''तीरथ धाम रच्या जुग मेला'' की उक्ति है। ऐसे तीर्थों एवं धामों के साथ अपनी-अपनी सुंदर तथा विशिष्ट परम्पराओं का अविचिछन्न संबंध जुड़ा रहता है। मानव-मानस में, इन स्थानों को देखकर अतीत की पावन स्मृतियां एक नूतनता धारण कर लेती हैं। वहां पर लगने वाले मेले तथा उनसे निष्पन्न विविध धार्मिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम मानव के हृदयाकाश में ज्ञान की शुभ्र ज्योत्सना भर देते हैं।

भारतीय आध्यात्मिक एवं धार्मिक जगत में 'चार धाम', 'अष्टपुरी' तथा 'अड़सठ तीर्थ' का चिरंतन काल से महत्व स्वीकार्य है। अन्तःकरण शुद्धि के ये तीर्थ धाम प्रथम सोपान माने जाते हैं। इनके परिभ्रमण से यात्री को एक ताजगी, नैतिक सबलता तथा धार्मिक भावना की प्राप्ति के साथ राष्ट्रीय भावना का विकास भी उसमें होता है। धर्म-प्रचार के तो ये मुख्य केन्द्र माने ही जाते रहे हैं।

बिश्नोई पंथ में भी अपने तीर्थ धाम अथवा गुरुद्वारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जंभगीता में इनकी संख्या आठ, जंभसागर में सात पर शब्दवाणी गुटके में श्रीरामजीदास ने इनकी संख्या नौ बताई है - 1. पीपासर, 2. सभराथल, 3. जांभोलाव (तालाब जुंभ सरोवर), 4. जांगलू साथरी,, 5. रोटू, 6. लोधीपुर, 7. लालासर साथरी, 8. मुकाम (मुक्तिधाम),। उक्त धामों में स्वामी सच्चिदानन्द ने जांगलू की साथरी को न गिनकर लोदीपुर (मुरादाबाद) की गणना की है और स्वामी रामानंद गिरी ने जांगलू की साथरी के अतिरिक्त रामड़ावास की गिनती नहीं की है। पर बिश्नोई पंथ में उपर्युक्त नौ धामों के अतिरिक्त 'गुडे की साथरी' और 'लोहावट की साथरी' का भी पूज्य एवं महत्वपूर्ण स्थान है। इन धामों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है -

1. पीपासर - (1508 वि. सं. जन्म स्थान) - पीपासर ग्राम जांभोजी का जन्म स्थान होने के कारण संपूजित है।

2. समराथल (वि. सं. 1540 निवास, वि. सं. 1542 धर्म स्थापना) - बिश्नोई पंथ में आदि आसन समराथल का महत्व सर्वोपरि है। पंथ की प्रमुख साथरी में इसकी गणना की जाती है। यह स्थान जांभोजी के समाधि स्थल मुकाम से दक्षिण दिशा में जगभग 2 कि.मी. के फासले पर स्थित है।

3. जांभोलाव (वि. सं. 1566) - जांभोलाव फलौदी (मारवाड़) के पास बने हुए एक तालाब का नाम है जिसको जांभोजी ने प्राणियों के हितार्थ बनवाया। यहां चैत्र मास की अमावस्या तथा भादवा की पूर्णमासी पर मेले लगते हैं जिसमें श्रद्धालु बिश्नोई यात्री दूर-दूर से आते हैं। यह पंथ का तीर्थ शिरोमणि माना जाता है।

4. जांगलू - यहां दो स्थान हैं। प्राचीन साथरी जहां जाम्भोजी वि.सं. 1570 में जैसलमेर जाते समय ठहरे थे तथा दूसरा स्थान गांव में है जहां मन्दिर है। इस मंदिर को पिछवाड़ा कहते हैं। जाम्भोजी के आदेश पर वरसिंह जी बाियाल ने तालाब खुदवाया था जो वरसींग नाडी कहलाती है।

5. रोटू (वि.सं. 1572) - यह मारवाड़ स्थित जांभोजी के धर्म प्रचार का केन्द्र रहा है। यहां जांभोजी ने अपनी योगसिद्धि से एक रात्रि में ही खेजड़ी वृक्षों का बाग लगा दिया था। आज भी हजारों खेजड़ी वृक्षों की पंक्ति रोटू ग्राम के चारों ओर दिखाई पड़ती है। यहां के बिश्नोई मंदिर में एक तलवार रखी हुई है। कुछ लोगों के मतानुसार तलवार जांभोजी की न होकर साधु केशोदास जी की है। जांभोजी ने कभी अस्त्र-शस्त्र धारण नहीं किया। यहां एक ऐसा पत्थर भी है जिस पर 'चरण चिन्ह' अंकित है जिसको जांभोजी का चरण चिन्ह् बतलाया जाता है।

6. लोधीपुर (मुरादाबाद) वि.सं. 1583-1590 के मध्य - यहां जाम्भोजी ने खेजड़ी का वृक्ष लगाया था। यहां प्रतिवर्ष चैत्र की अमावस्या को मेला लगता है।

7. लालासर - लालासर के जंगल में जांभोजी अपने पार्थिव शरीर का त्याग कर परम धाम को सिधारे थे। इसलिए इस ग्राम का महत्व प्रमुख साथरी के रूप में स्वीकार्य है।

8. मुकाम (मिंगसर वदी ग्यारस वि. सं. 1593 समाधिस्थ) - यहां जाम्भोजी की पवित्र समाधि है तथा उस पर अतिरमणीय विशाल मंदिर बना हुआ है। यह मंदिर स्वामी रणधीर जी ने जांगलू के सेणौजी बणियाल के सहयोग से बनवाया था जिसका शिलान्यास बीकानेर के राव जैतसी के हाथ से हुआ बताया जाता है। वह वि.सं. 1600 में बनकर पूर्ण हुआ। यहां प्रतिवर्ष दो बड़े मेले लगते हैं। प्रथम फाल्गुन कृष्णा अमावस्या और द्वितीय आश्विन की अमावस्या को। ये मेले उक्त महीनों की कृष्णा त्रयोदशी से आयोजित होकर उस मास की शुक्ला तृतीय तक चलते हैं। परन्तु मेले की प्रमुख तिथि अमावस्या ही मानी गई है। अमावस्या को यहां बड़ा होम होता है तथा हजारों की संख्या में दूर-दूर से यात्री आते हैं।

इनके अतिरिक्त जैसा कि बताया जा चुका है गुड़ा बिश्नोइयान की साथरी, लोहावट की साथरी, भींयासर की साथरी रामड़ावास आदि का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

2.1.2 व्यक्तित्व -

वंश और परिवेश के संयुक्त परिणाम का नाम है व्यक्तित्व अर्थात व्यक्ति किस वंश परम्परा और रक्त परम्परा से जन्मा है तथा किस परिवेश में वह जी रहा है, इस सबसे जिस चीज का निर्माण होता है वह व्यक्तित्व कहलाता है। जाम्भोजी की वंश परम्परा और परिवेश ने मिलकर उनके व्यक्तित्व में जिन मुख्य बातों का समावेश किया वे ही उनके व्यक्तित्व हैं तथा इन्हें निम्नलिखित चेतनाओं में अभिव्यक्त किया जा सकता है।

क. धर्म चेतना - जाम्भाणी संत-परम्परा का निर्गुण भक्ति परम्परा में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जाम्भाणी साहित्य में निर्गुण विष्णु और गुरु जम्भेवर को एक ही स्वरूप में माना जाता है। गुरु जम्भेश्वर ने परमतत्त्व को अनेक रूपों, विविध आयामों, अनेक नामों में उसकी उपासना, स्तुति, नामस्मरण करने की प्रेरणा प्रदान की है। कभी ईश्वर को सगुण रूप में अंगीकार किया है तो कभी निर्गुण, निराकार के सन्दर्भ में उसकी उपासना करने का सदुपदेश दिया है। भारतीय आध्यात्मिक साहित्य में सगुण और निर्गुण, व्यक्त और अव्यक्त आदि अनेक धाराओं में एक आदिकालीन परम्परा चली आ रही है। निर्गुण विचारधारा के अनुसार ईश्वर निराकार है, जिसका वर्णन लौकिक दृष्टांतों द्वारा असंभव है। वह रूपकार रहित और लौकिक गुणों से परे है, परन्तु सगुणवादी विचारधारा के अनुसार ईश्वर साकार रूप में अवतरित होता है। वह भिन्न-भिन्न युगों में भिन्न-भिन्न अवतार लेता है। अवतार लेकर वह आसुरी वृत्ति वाले लोगों का विनाश करता है तथा सात्विक लोगों का उद्धार करता है।

''गुरु जम्भेश्वर निर्गुण काव्यधारा के अध्यात्म पथ के पथिक थे। ब्रह्मानुभूति के द्वारा अगम-अलेख की भाव व्यंजना करना उनका लक्ष्य था। अपनी इस सर्वस्व चेतना से वे ईश्वर के स्वरूप को लेकर समाज में अनेक मत और विविध धाराएं परिव्याप्त थीं। लोग अपने-अपने धर्मानुसार या मतानुसार ईश्वर के विषय में कथन कर रहे थे। अपने-अपने आराध्य या ईष्ट की सर्वश्रेष्ठता घोषित कर रहे थे। गुरु जम्भेश्वर ने ऐसी प्रतिकूल स्थिति का परीक्षण करके

ईश्वर विषयक इस स्थिति को सन्तुलित, व्यवस्थित और नियोजित करके जन सामान्य को समतावादी बनवाया। उन्होंने बड़ी सहजता से एकेश्वराद और अनेकेश्वरवाद के बीच मध्यमार्ग को अपनाकर सहिष्णुता का परिचय दिया। उनको कुरान, पुराण, पोथी और पंडित, मुल्ला और मौलवी कैसे-कैसे शब्दाकारित करते हैं। अपने निहित स्वार्थ के लिए समाज को भ्रष्ट तथा विवेक विनष्ट करके अपने स्वार्थ का सम्पोषण करते हैं।''[10]

ख. कर्म चेतना - भारतीय धर्म परम्परा में कर्म को धर्म का महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त माना है। वैदिक धर्म में कर्मसिद्धान्त को 'ऋत' कहा गया है। जिसका अर्थ होता है जगत की व्यवस्था। इस व्यवस्था में नैतिक व्यवस्था भी समाविष्ट है। यह 'ऋत' का विचार उपनिषद् दर्शन में कर्मवाद का रूप ले लेता है। और साथ ही न्याय-वैशेषिक दर्शन में भी कर्मवाद का रूप ले लेता है। न्याय वैशेषिक दर्शन में कर्म का सिद्धान्त को अदृष्ट कहा जाता है। क्योंकि यह दृष्टिगोचर नहीं होता। विश्व की समस्त वस्तुएं यहाँ तक कि परमाणु भी इस नियम से प्रभावित होते हैं। मीमांसा दर्शन में कर्म सिद्धान्त को अपूर्ण कहा जाता है। न्याय दर्शन व वैशेषिक दर्शन में अदृष्ट का संचालन ईश्वर के अधीन है। परन्तु मीमांसा दर्शन मानता है कि कर्म सिद्धान्त स्वचालित है।

हिन्दू धर्म में कर्म एक ऐसा सिद्धान्त है जो सभी कर्मों पर लागू नहीं होता। यह उन्हीं कर्मों पर लागू होता है, जो राग-द्वेष एवं वासना से संचालित होते हैं। कार्य किसी उद्देश्य की भावना से किये जाते हैं। निष्काम कर्म, कर्म सिद्धान्त से स्वतंत्र है। वैसे तो कर्म शब्द का प्रयोग दो अर्थों में होता है। साधारणत: कर्म शब्द का प्रयोग कर्म सिद्धान्त के रूप में होता है। दूसरा कर्म कभी-कभी शक्ति के रूप में प्रयोग होता है, जिसके फलस्वरूप फल की प्राप्ति होती है। इस दृष्टि से कर्म तीन प्रकार के हैं - संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म तथा संचीय मान कर्म। संचित कर्म जो अतीत के कर्मों से उत्पन्न होते हैं। परन्तु फल मिलना अभी शुरू नहीं हुआ है। प्रारब्ध कर्म वह कर्म है जिसका फल मिलना अभी शुरू हो गया है। इसका भी संबंध अतीत से है। वर्तमान जीवन के कर्मों का जिनका फल भविष्य में मिलेगा संचीयमान कर्म कहा

जाता है। कर्म सिद्धान्त पर एक आक्षेप यह है कि यह भाग्यवाद को प्रश्रय देता है। तथा साथ ही निराशा का संचार करता है। हिन्दू धर्म में वर्णित कर्म सिद्धान्त को जैन और बौद्धों में भी मान्यता मिली है। जहाँ तक कर्म सिद्धान्त का संबंध है। बौद्ध-धर्म, जैनधर्म, ईसाई धर्म और इस्लाम धर्मों में भी कर्म सिद्धान्त पर बल दिया गया।

हिन्दू धर्म में बंधन से मुक्ति पाने के लिए कर्म पर भी जोर दिया गया है। कर्मयोग, राजयोग और ज्ञानयोग की तरह मुक्ति का एक मार्ग है। हिन्दू धर्म के प्रधान ग्रंथ भगवद्गीता में मानव को निरन्तर कर्म करने की प्रेरणा व अपने कर्त्तव्यपथ पर अग्रसर रहने की शिक्षा दी है। गीता में भगवान श्री कृष्ण निरन्तर कर्म करने का आदेश देते हैं। अचेतन वस्तु को भी कार्य करने की प्रेरणा देते हैं। अतः कर्म से विमुख होना महान मूर्खता है। व्यक्ति को प्रत्येक क्षण कर्म करते रहना चाहिये। हिन्दू धर्म की जीवन पद्धति में पूर्णता पाने के लिए कर्म की आवश्यकता पर अत्यधिक बल दिया है। हिन्दू धर्म में निष्काम कर्म के द्वारा मुक्ति को अपनाने का आदेश दिया गया है। कर्मयोग के द्वारा जिस कर्म को सम्पादित करने का आदेश दिया गया है, वह निष्काम कर्म है। व्यक्ति को कर्म के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिये। कर्म को बिना किसी फल की अभिलाषा से करना, कर्म करते समय फल की प्राप्ति की भावना का परित्याग करना परमावश्यक है। हिन्दू धर्म में कर्त्तव्य के लिए कर्म करने का आदेश दिया गया है। कर्त्तव्य-कर्त्तव्य का अर्थ है कि मानव को कर्त्तव्य करते समय कर्त्तव्य के लिए तत्पर रहना चाहिये। कर्त्तव्य करते समय फल की आशा का भाव छोड़ देना चाहिये। ऐसा कर्म का मार्ग मानव को मोक्ष प्रदान करता है।

''भारतीय धर्म-दर्शन परम्परा में कर्म को जो महत्त्व दिया गया है, उसी के आधार पर गुरु-जम्भेश्वर ने कर्म सिद्धान्त की परम्परा को आगे बढ़ाया है। उनका विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म का स्वयं उत्तरदायी है। जैसा कर्म करेगा उसे वैसा ही फल प्राप्त होगा। इसलिए प्रतिक्षण मनुष्य को शुभ कर्म करते रहना चाहिये। कर्मों को निष्काम भाव से करना ही प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है। गुरु जम्भेश्वर ने अपनी वाणी में यह बतलाने का प्रयास किया

है कि मनुष्य स्वयं अनैतिक कार्यों को करके उसका दोष भगवान को देता है परन्तु मनुष्य को यह समझ लेना चाहिये कि इस कार्य के लिए वह स्वयं दोषी है।''[11]

अभिप्राय यह है कि मनुष्य की करणी के अनुसार फल प्राप्ति होगी। इसमें विष्णु का कोई दोष नहीं है। जैसी खेती की जायेगी वैसी ही फसल प्राप्त होगी।

गुरु जम्भेश्वर ने कर्मों की उपयोगिता बताते हुए कहा है कि प्रकृति के द्वारा वर्षा होती है। जमीन, खाद, बीज के अनुसार ही फसल पैदा होती है। इसमें पानी, खाद और जमीन तथा उसके उपरांत किसान की कड़ी मेहनत ही काम आयेगी तथा अच्छी फसल की आशा रखनी चाहिये। इस प्राकृतिक उदाहरण द्वारा उन्होंने श्रेष्ठ कर्मों की बहु उपयोगिता बतलाते हुए कहते हैं कि उत्तम और श्रेष्ठ जीवन पूर्व कर्मों के अनुसार ही प्राप्त होता है। ईश्वर अहर्निश जीवन प्रक्रिया में कोई अवरोध उत्पन्न नहीं करता है। इस जीवन में आप श्रेष्ठ कार्य करोगे तो आगत जीवन में आपके ही काम आयेंगे। कर्मों के अनुसार ही जीव अच्छे एवं बुरे होते हैं। व्यक्ति कर्मों के अनुसार ही उत्तम और मध्यम होता है न कि कुल और आयु से।

मनुष्य सुकृत कार्यों के कारण ही महान बनता है। शुभ कार्यों से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है। अकर्मी मनुष्य नरक का अधिकारी होता है। इसलिए मनुष्य शुभ कर्मों को करे और सकारात्मक भावों को अन्तःकरण में धारण करे। ऐसा करके मनुष्य एक स्वस्थ, सभ्य और सुसंस्कृत समाज का निर्माण कर सकता है। गुरु जम्भेश्वर का दृष्टिकोण एक ऐसे स्वस्थ समाज का निर्माण करना था जिसमें किसी प्रकार का भेदभाव न हो, अर्थात समता प्रधान समाज की स्थापना से ही श्रेष्ठ सामाजिक संरचना का निर्माण किया जा सकता है। जीवन विधि को जानने वाला ही आवागमन के चक्कर से मुक्त हो जाता है। दिग्भ्रांत मनुष्य आवागमन के चक्कर में पड़ा रहता है। वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता। इसलिए गुरु जम्भेश्वर, प्रत्येक मनुष्य को शुभ कर्म करने का उपदेश दिया है। शुभ कर्म करते समय कोई बाधा उत्पन्न होती है तो किसी प्रकार का पश्चाताप नहीं करना चाहिये। क्योंकि शुभ कर्म अंतिम सत्य तक पहुंचाने वाले होते हैं।

शुभ कर्म जीव के साक्षी होते हैं। यमराज के सामने शुभ और अशुभ कर्मों का लेखा जोखा होता है। इस लेखे-जोखे का हिसाब प्रत्येक जीव को आगामी जन्म के समय देना पड़ता है। इसलिए मनुष्य को स्वयं के कर्मों के अनुसार ही फल की प्राप्ति होगी।

अनेक पूर्व जन्मों के सुकृत कार्य कौन से जन्म में काम आ जाये यह तो फल प्राप्ति पर निर्भर करता है। ईश्वर कौन से जन्म के शुभ कार्यों का फल किस जन्म में दे दे, यह ईश्वर को ही मालूम है। इसलिए प्रतिक्षण विष्णु का जप करते रहना है। हाथ से कार्य करते रहो और मुख से विष्णु का जप करते रहो। इससे मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होगी।

''गुरु जम्भेश्वर कर्म सिद्धान्तों को कई आयामों के संदर्भ में स्वीकार करते हैं। वे कर्मों को निष्काम भावों से प्रेरित मानते हैं। सकाम कर्म मुक्ति नहीं दे सकते। संसार के प्रत्येक कार्य को निष्काम भाव से करना चाहिये। निष्काम कार्य का कारण से संबंध होता है। श्वेताश्वरोपनिषद में बतलाया है कि गुणों से युक्त कोई भी प्राणी फल की कामना से कर्म करता है तो वह विभिन्न योनियों में भटकता हुआ अपना जीवन व्यर्थ ही गंवा देता है।''[12]

इस प्रकार गुरु जम्भेश्वर का कर्म सिद्धान्त मानव कल्याण में गहरी आस्था रखता है। उनका कर्म सिद्धान्त मुक्तिदाता है। इसलिए उनका कर्म चिन्तन स्वान्तः सुखाय है, प्रयोजन हेतु सत्यं, शिवं और सुन्दरम् की नीति-नियमों पर आधारित है, जो मानव के कल्याण के साथ-साथ यश, अर्थ, काम और मोक्ष की प्रेरणा देने वाला है। गुरु जम्भेश्वर का कर्म सिद्धान्त मानव जीवन को अहर्निश प्रेरणा देने के साथ ही लोकमंगल की भावना के लिए एक महत्त्वपूर्ण आदर्श है जिस पर चलकर मनुष्य अपना जीवन सार्थक और उपयोगी बना सकता है।

ग. नैतिक चेतना - भारतीय नीतिशास्त्र का उद्‌भव एवं विकास वेदों, उपनिषदों, गीता, रामायण, महाभारत में पाया जाता है। ''वेदों व उपनिषदों के बाद बौद्ध दर्शन एवं जैनदर्शन में नीतिशास्त्र की महत्त्वपूर्ण बातों का समावेश हुआ है।''[13] वैदिक दर्शन में मानव जीवन, प्राकृतिक शक्तियों तथा ईश्वर के विषय में चिंतन किया गया है, जिसमें मानव जीवन को

अधिकाधिक सुखमय, समृद्ध और आनन्दमय जीवन जीने की प्रेरणा दी गयी है। मृत्यु के उपरांत मोक्ष मिलने की प्रेरणा भी महत्त्वपूर्ण है। वैदिक ऋषियों ने मोक्ष के अतिरिक्त मानव जीवन की जटिल समस्याओं के साथ अध्यात्मवाद के रहस्यों पर चिंतन किया है जैसे कर्मवाद, पुनर्जन्म, आत्मा की अमरता आदि नैतिक सिद्धान्तों को भारतीय दर्शन व उपनिषदों में स्वीकार किया है। उनका कर्मवाद शुभ-अशुभ, उचित-अनुचित फल प्राप्ति के लिए अलग-अलग मापदण्ड निर्धारित करता है। पुनर्जन्म की विचारधारा को स्वीकार करते हुए आत्मा की सत्ता एवं अमरता में भी विश्वास करते थे। उन्होंने रहस्यवादी प्रश्न भी उठाये हैं कि ब्रह्माण्ड का स्वरूप क्या है? और इसकी उत्पत्ति कब, क्यों तथा कैसे हुई? प्रकृति को कौनसी शक्ति चलाती है? उस शक्ति का नियमन कौन करता है? इन रहस्यवादी और दार्शनिक प्रश्नों पर आगे चलकर, उपनिषदों में अधिक गम्भीरता पूर्वक चिंतन किया गया है। यह परमसत्ता संसार का संचालन किस प्रकार करती है। निरूक्त में इन सभी पहलुओं पर विचार किया गया है। यास्क के अनुसार भिन्न-भिन्न देवता एक ही परमसत्ता के विभिन्न नाम हैं। जिनका वर्णन उपनिषदों में एक ही ब्रह्म के रूप में हुआ है।

''गुरु जम्भेश्वर ने अपने सम्पूर्ण नैतिक दर्शन का निर्माण उनतीस धर्म-नियमों की आचार संहिता तथा जम्भवाणी में आये हुए नैतिक सद्गुणों के आधार पर किया है। जम्भवाणी में योगदर्शन द्वारा बताए गए पांच यम भी प्राप्त हो जाते हैं जिन्हें जैन आचार्यों ने पंच महाव्रत कहा है। गुरु जम्भेश्वर की वाणी में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य स्वत: ही उनके उपदेशों में सन्निहित हैं। गुरु जम्भेश्वर प्रकृतिरक्षा, जीवरक्षा, पेड़-पौधों के संरक्षण का जो विचार प्रतिपादन किया है उनका तत्कालीन युगीन परिवेश और सभी परिस्थितियों को मध्य में रखकर किया है।''[14] आत्मशुद्धि, शुद्ध आचरण तथा आत्मानुशासन को उन्होंने बिश्नोई धर्म में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। सुबह जल्दी स्नान करना, अमावस्याव्रत, शील, संतोष, दोनों काल संध्या, शाम के समय हरिकीर्तन एवं आरतियों तथा साखियों का गायन, बच्चा पैदा होने पर तीस दिन का सूत्तक, रजस्वला स्त्री को पांच दिन तक गृहकार्यों से अलग

रहना, आचरण शुद्धता का ही पालन है। नित्यप्रति हवन करना अर्थात स्थित प्रज्ञ होना, प्रेम पूर्वक रहना, स्वर्ग की कामना रखना अर्थात ऐसे सुकृत कार्य करना जिससे बैकुंठ की प्राप्ति हो जाये। पानी को छानकर प्रयोग में लाना, वाणी को विवेकपूर्ण चिंतन करके बोलना अर्थात सोच समझ कर वार्तालाप करना। रसोई में प्रयोग होने वाले ईंधन को साफ करके प्रयोग में लाना ताकि उसके साथ कोई जीव अग्नि में न जले। जीवदया उनका मुख्य धर्म और सिद्धान्त है। हरे वृक्ष नहीं काटना, ताकि पृथ्वी का पर्यावरण शुद्ध रहे। क्षमा और दया को अंत:करण में धारण करना। किसी प्राणी से द्वैष-भाव नहीं रखना। गुरु आज्ञा का पालन करना। भारतीय धर्म-परम्परा में गुरु की आज्ञा का पालन एक आदिकालीन परम्परा है। चोरी, निंदा, असत्य भाषण का परित्याग किया है। वाद-विवाद का परित्याग करना। सुलझा हुआ व्यक्ति कुतर्क या संशय में नहीं पड़ता। किसी भी तथ्य पर विचार-विमर्श करते समय कुतर्कों की सहायता नहीं लेनी चाहिये। तर्क भी युक्तिसंगत होना चाहिये। क्रोध, घृणा, विद्वेष, ईर्ष्या से दूर रहना चाहिये। इनसे पारिवारिक तथा सामाजिक कलह व अराजकता फैलती है। इसलिए सभी परिस्थितियों में व्यक्ति को समभाव रहना चाहिये। किसी भी प्राणी के प्रति भेदभाव नहीं रखना, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दुर्गुणों का परित्याग करना। प्रत्येक क्षण मन में सात्विक भावना रखना ताकि इन दुर्गुणों का स्वत: बहिष्कार हो जायेगा। रसोई अपने हाथ से करना। खाना बनाते समय शुद्धता और पवित्रता का ध्यान रखना आवश्यक है। अशुद्ध भोजन से मन के विचार भी अशुद्ध हो जायेंगे।

गुरु जम्भेश्वर ने कतिपय आधारभूत नैतिक आचरणों के सिद्धान्तों, धार्मिक मान्यताओं एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों को मानव जीवन के लिए उपयोगी मानते थे। उनके विचारों, क्रियाओं और मान्यताओं में एकरूपता परिलक्षित होती है। अंतत: वे एक ही परमतत्त्व (विष्णु) के जप के लिए उपदेश देते थे। उनकी वाणी पर गहन चिंतन करने पर ऐसा मालूम होता है कि निष्कामना और लोक व्यवहार में सामंजस्य, साधना तथा जप में समन्वय, वैराग्य तथा भौतिक जीवन में संतुलन, कथनी-करनी में एकरूपता आदि ऐसी अनेक उपलब्धियां

उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को अनुकरणीयता प्रदान करती है। यही उनका नैतिक दर्शन है।

घ. सामाजिक चेतना - जम्भवाणी का सामाजिक संदर्भ में विशेष महत्व है। सम्पूर्ण जम्भवाणी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक मूल्यों की भाव-भूमि पर उद्‌बोधन की गयी है जिसके बहुत सारे आयाम सामाजिक धरातल के आधार पर प्रस्फुटित हुए हैं। जिसमें समाज की विभिन्न पद्धतियों, अवस्थाओं, विधियों, नियमों, विचारों का वर्णन किया गया है, जिसमें समाज के समष्टिगत रूपों का विस्तार से वर्णन किया गया है। जम्भवाणी के प्रतिमानों की प्रासंगिकता सामाजिक मूल्यों के आधार निर्धारित करें तो अनेक सामाजिक समस्याओं का निवारण स्वत: ही हो जायेगा। उनकी साधना पद्धति आध्यात्मिकता के साथ-साथ सामाजिक परम्परा और विविध संदर्भों में ग्राह्य है जो लोक की जीवन-दृष्टि एवं सामाजिक व्यवस्था से गहरा सम्बन्ध रखती है उन्होंने अपने अनुभव का आधार लोक जीवन को माना है। सामाजिक जीवन को त्यागकर उन्होंने आध्यात्मिक उपलब्धि को स्वीकार नहीं किया है। समाज में रहते हुए अपने परिवार का संरक्षण और संवर्द्धन करते हुए उन्होंने आध्यात्मिक उपलब्धि को स्वीकार किया।

आध्यात्मिक साधना में संलग्न रहते हुए गुरु जम्भेश्वर जी ने सम्पूर्ण लौकिक जीवन को स्वीकारने एवं लोक-त्याग की अपेक्षा लोकग्रहण की भावना को अपनाने का सदुपदेश दिया है। "उन्होंने सामाजिक जीवन से अलग होकर साधना करने पर बल नहीं दिया है बल्कि इसकी अपेक्षा उन्होंने लोक जीवन में ही रहकर उससे विरक्ति उत्पन्न कर लेने की साधना को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। इसी कारण गुरु जम्भेश्वर के शिष्यों ने भी अपनी सामाजिक स्थिति को अस्वीकार नहीं किया। परन्तु समाज के बीच लौकिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए भी विष्णु जप को जिया जा सकता है। गृहस्थी में रहते हुए पारिवारिक दायित्वों को पूर्ण करना और साथ-साथ में विष्णु की भक्ति करना आध्यात्मिकता और सामाजिकता का सुन्दर समन्वय है।"[15]

लौकिक जगत के राजा-महाराजाओं, बादशाहों, ऐश्वर्यशालियों तथा कुम्भकरण, रावण एवं देवताओं और दानवों जैसे बलशाली, पराक्रमी राजाओं को इस लौकिक जगत से जाना पड़ा था जिनका सामाजिक क्षेत्र में अत्यधिक प्रभाव था। उनको भी संसार से जाना पड़ता था। सांसारिक कंवराईपन पर प्रहार करते हुए गुरु जम्भेश्वर कहते हैं कि यह कंवराई जो लौकिक जगत में ही खेह की भांति विनष्ट हो जायेगी, उसका अस्तित्व इस संसार तक ही सीमित रह जायेगा, कंवराई तो वही श्रेष्ठ साबित हो सकती है, जो स्वर्ग के लिये सन्मार्ग बना सकती है। इस सांसारिक जगत में सामाजिक स्तर को प्रभावशाली बनाने वाली विभूषित उपाधियाँ, धन, वैभव, ऐश्वर्य, सैन्य समूह लोकमहिमा की वृद्धि करने वाली पद्धतियाँ भी धुएं के बादल की भांति समाप्त होने वाली हैं, उनका सामाजिक यश क्षणिक अहम् देने वाला है।

शाश्वत सत्य की प्रेरणा देने वाला तो केवल सारंगधर रूपी विष्णु ही है जिसका नाम स्मरण करने पर अनेक प्रकार के पापकर्म विनष्ट हो जाते हैं तथा धर्म की पृष्ठभूमि तैयार होती है। गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी अनुभूतियों और उद्‌गारों को बड़ी सफलता के साथ व्यक्त किया है यही सफलता उनकी वाणी की शक्ति और रचना का गुण है। उनकी वाणी में समाज के विविध एवं बहुआयामी चित्र प्रस्तुत हुए हैं। सामाजिक क्षेत्र में जिन तथ्यों का उल्लेख बार-बार अपनी वाणी में किया है वे समाज के लिये बहूपयोगी थे उनसे समाज के लोगों को एक नई राह मिली है।

नाथ पंथियों की कुप्रवृत्तियों व अन्धप्रथाओं पर प्रहार करते हुए गरु जम्भेश्वर जी ने समाजसुधार और व्यक्तिसुधार को अपनी वाणी का विषय बनाया है। आचरण शुद्धता व आत्मशुद्धि उनकी वाणी का केन्द्रीय विषय है। गुरु जम्भेश्वर जी ने भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाली परमसत्ता की एकता को प्रतिपादित करके अव्यक्त सत्ता की अनुभूतियों का विवरण प्रस्तुत किया है। व्यक्त और अव्यक्त के बीच में जो भ्रम-भेद था गुरु जम्भेश्वर जी ने उसके आधार पर प्रहार करके सामाजिक भेदभाव की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न किया और साथ ही सामाजिक सौहार्द की पूर्व पीठिका तैयार की है। उन्होंने मानव-मानव के बीच उत्पन्न

भेदभाव पूर्ण नीति को समाप्त करके सामाजिक एकता की सुदृढ़ नींव रखी। जिसमें कोई छोटा-बड़ा, ऊँचा-नीचा नहीं है।

जाम्भो जी के चिन्तन का मूल विषय अध्यात्म और आत्मोत्थान है। उन्होंने समाज, संस्कृति, दर्शन आदि को अध्यात्म के पोषक व्यंजक तत्व में अंगीकार किया है। उनका उद्देश्य सम्पूर्ण मानवता का सांस्कृतिक अभ्युत्थान करना था। संस्कृति की व्याप्ति में उक्त तथ्यों का महत्व और भी ज्यादा है, क्योंकि संस्कृति अपने युग के लोक जीवन की मान्यताओं को अभिभूत करती है और साथ ही साथ समानान्तर लोक जीवन की मान्यताओं को शनैः-शनैः अपने में समाहित करती है। इसलिए गुरु जम्भेश्वर ने अपनी वाणी एवं चिन्तन में आध्यात्मिक चेतना के साथ और उस मानवीय चेतना को भी अधिक बोधगम्य बनाने के लिए अनेक संदर्भों एवं आयामों की अवतारणा की है।''[16]

2.1.3 चिन्तन और पंथ -

परिस्थितियाँ और संस्कार यदि व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं तो व्यक्तित्व किसी चिन्तन से मण्डित हो जाता है। अर्थात 'संस्कार' व्यक्ति को अपनी युगीन परिस्थितियों को गहराई से देखने के लिए विवश करता है। यह संस्कारों की मूलभूत प्रवृत्ति पर निर्भर होता है कि व्यक्ति को वह किस दिशा या दिशाओं में मोड़े। कुछ का व्यक्तित्व सामाजिक दर्शन से परिपूर्ण हो जाता है तो कुछ का आध्यात्मिक दर्शन से या कुछ का बहुआयामी दर्शन से। पूर्वमध्यकाल में देश की विशेषकर राजस्थान की परिस्थिति अत्यधिक विकट और विषम सी रही थी। यह विकटता विषमताओं की गहनता से ही गम्भीर नहीं थी अपितु दिशाओं में भी बहु दिशायी थी। इन बहुदिशाओं में सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, पर्यावरणीय आदि आदि अनेक प्रकार की थी - पूर्वमध्यकाल के भक्ति आन्दोलन के उद्‌भव में इनमें से एक नहीं एकाधिक परिस्थितियाँ भक्ति आन्दोलन एवं संत काव्य और संत चेतना के उद्‌भव की कारण थी। इस काल के परिवेश पर इस प्रकार प्रकाश डाला जा सकता है -

"मध्यकालीन धर्मों में हिन्दू, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, ईसाई प्रमुख थे जिनका सम्पर्क द्वार उन्मुक्त था। लोक-विश्वासों पर आधारित लोकधर्म की निष्ठा किसी विशेष धर्म के प्रति नहीं थी। उसका धर्माचार परम्परागत और चमत्कार प्रमाणित था। ... हिन्दू धर्म इस्लाम के सम्पर्क से मात्र व्यक्तिगत साधना का केन्द्र न रह कर सामूहिक साधना का रूप धारण करने लगा था और उसमें आन्दोलनकारी प्रवृत्तियाँ उभरने लगी थी। फलस्वरूप प्राय: सभी धर्मों में युगानुरूप परिस्थिति के अनुसार पंथों, सम्प्रदायों और उपसम्प्रदायों तक की सृष्टि होने लगी थी, जिनका मुख्य उद्देश्य आत्म निरीक्षण और परिस्थिति परीक्षण द्वारा आवश्यक सुधार करके परम्परागत आचार-विचारों को किसी-न-किसी रूप में प्रश्रय देकर जीवित रखना था। ... हिन्दू धर्म में शैव, शाक्त और वैष्णव सम्प्रदाय पहचान बनाए रख सके। ... शैवधर्म में भी उपसम्प्रदायों का प्रादुर्भाव हुआ। इनमें नाथ-योगी सम्प्रदाय को विशेष महत्त्व मिला। दूसरी ओर वैष्णव धर्म में स्वामी रामानन्द ने विशेष दिशा और दृष्टि प्रदान की। शाक्त सम्प्रदाय को शंकराचार्य ने एक विशेष रूप दिया परन्तु आगे चलकर इसमें अंधविश्वास ने स्थान पा लिया जिससे भक्ति का मूल रूप धूमिल पड़ गया। तीर्थ और मंदिर व्यापार के केन्द्र से लगने लगे और पण्डों-पुरोहितों के आचार-व्यवहार मर्यादा का उल्लंघन कर उच्छृंखलता की कोटि में पहुँच गए। ... जैन और बौद्ध धर्म श्रवण परम्परा के हैं। इनमें आई गिरावट को दूर करने के लिए अनेक प्रयास हए। उदाहरणार्थ बौद्धधर्म में मंत्रयान, वज्रयान, सहजयान और कालचक्रयान जैसे उपसम्प्रदाय इसी के परिणाम है। इन्होंने मूल प्रश्न को छोड़कर बाह्य विधानों का दिखावा खड़ा कर दिया है। मध्यकालीन भक्ति आन्दोलन ऐसी बातों के विरोध में जोर पकड़ रहा था।[17]

दूसरी ओर भारत में इस्लाम का प्रभाव भी बढ़ रहा था। यह प्रभाव प्रशासनिक-राजनैतिक ही नहीं अपितु धार्मिक, सांस्कृतिक सामाजिक भी था। इस प्रभाव ने भी भारतीय जनमानस को झकझोर कर रख दिया। इसके साथ भारतीय समुदाय के समीकरण और विषयीकरण के पक्ष में ध्यान आकृष्ट कर रहा था - "इस्लाम धर्म में शरा और बेशरा दो प्रकार की कोटियाँ हैं। इन शरा सनातनी और बेशरा मस्तमौला फकीर थे, जो कभी-कभी पीर पैगम्बर के

चमत्कारपूर्ण करिश्मों का आश्रय भी लिया करते थे। ये अपने क्रियाकलापों में इस्लाम के मूल सिद्धान्तों की उपेक्षा तक कर दिया करते थे। ... भारतीय सूफी मुख्यतः बेशरा सम्प्रदाय के हैं जो इस्लाम के अनुयायी होकर भी सनातन पंथी मुसलमानों से पूरी तरह मेल नहीं खाते थे। ऐसे सम्प्रदायों में चिश्ती, कादिरी, सुहरवर्दी, नक्शाबन्दी और शत्तारी थे।''[18]

इस प्रकार पूर्व मध्यकाल का धार्मिक परिवेश अत्यधिक विषमताओं और विडम्बनाओं से भरा था। इसमें लोक चेतना का उद्‌भव दिखाई दे रहा था। परम्परा से चले आ रहे धार्मिक प्रवाह में चल रहे परम्परागत धर्मों और उनके आचरण व्यवहार से कुछ चिन्तनशील लोगों में असंतोष एवं परिष्कार का भाव जन्म ले रहा था वे इस परिष्कर कार्य को मिले जुले रूप में अर्थात परम्परागत धर्म के अच्छे सिद्धान्तों को लेकर तथा प्रचलित आडम्बरी धार्मिक रूप का विरोध कर धर्म-समाज में एक नई चेतना का समावेश करने के लिए प्रयत्नशील रहे जिनमें आत्मविश्लेषण और आत्मपरिष्कार की भावना अत्यधिक प्रबल थी। इन नवोदित सम्प्रदायों में धर्म के साथ अर्थ, समाज, कृषि, पर्यावरण जैसे विषय भी समाहित होते चले गए। अर्थात भक्ति आन्दोलन में निर्गुण-सगुण उपासना को ही केन्द्र में नहीं रखा गया अपितु जीवन-जगत के अनेक नये-नये तत्कालीन संदर्भों को नई-नई दृष्टि देने में लग गए। ऐसे प्रयासों को बल दिया स्वामी रामानन्द ने तो विस्तार दिया कबीर, तुलसी एवं जाम्भोजी जैसे असंख्य संतों और भक्तों ने। जाम्भोजी महाराज ने अपने परिवेश एवं क्षेत्र की धार्मिक, सामाजिक आदि समस्याओं को पैनी दृष्टि से देखा और एक लोकधर्मा सन्त के रूप में अपना चिन्तन निश्चित किया, एक नये सम्प्रदाय या पंथ का प्रवर्तन भी किया।

पंथ-प्रवर्तन की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए राजस्थानी धर्म साहित्य परम्परा के मर्मज्ञ डॉ. हीरालाल माहेश्वरी का मत भी कुछ ऐसा ही है - ''अनेक देवी देवताओं की मान्यता और पाखण्ड पूजा ही प्रचलित थी। अधिकांश लोग धर्म के असली तत्व को न जानकर चमत्कार को मानते थे। भौतिक लाभ प्राप्ति उनका मुख्य प्रयोजन था। अध्यात्म लाभ के इच्छुक कम ही थे। 16वीं शताब्दी में राजस्थान में प्रचलित सभी धर्म-मत या तो केवल बाह्य साधना विधि

से चिपके हुए थे या केवल कथनी प्रधान हो गए थे।''[19] इस परिस्थिति एवं परिवेश ने नये-नये संतों एवं समाज सुधारकों को खड़ा होने के लिए विवश किया। उसी के परिणाम को दर्शाते हुए डॉ. माहेश्वरी आगे कहते हैं - ''जाम्भोजी ने सम्यक् प्रकार से इसको लक्ष्य किया था। उन्होंने व्यापक रूप से प्रचलित इस भावना का प्रतिकार किया। उन्होंने किसी भी धर्म सम्प्रदाय या मत को बुरा नहीं बतलाया और न ही वेद, पुराण, शास्त्रों और कुरान की निन्दा की। उन्होंने तो धर्म के नाम पर प्रचलित और प्रचारित पाखण्ड, बाह्य वेश और लोकदिखावे की निन्दा की। धर्म के असली तत्व को जानने और आचार-विचार की पवित्रता पर बराबर जोर दिया। .... उस समय चारों धर्मों का समाज में प्रसार एवं व्यवहार था परन्तु ये बिना तत्व को जाने भ्रम में थे और दूसरों को भरमाते थे। वेद और पुराण के नाम पर जाल फैला हुआ था और अनेक दंत कथाओं का प्रचार था। हिन्दू मुसलमानों में ऐसे जोगी, जंगम, सिंघी बजाने वाले, दिगम्बरी, संन्यासी, ब्रह्मचारी, सूफी, दरवेश, पीर, जति, तपस्वी, तकिये में रहने वाले, जपिया, मुंडिया, आयस, ऋषि, फकीर, पंडित, पुरोहित, मिश्र, व्यास, ज्योतिषि, काजी, मुल्ला आदि थे। सिद्धि का मर्म और आचार-विचार जानने वाले विरले साधु थे। ... हिन्दुओं में मूर्ति पूजा बहुत प्रचलित थी तथा मुसलमान मुहम्मद के नाम पर अबाध रूप से निरीह जीवों की हत्या करते थे। संन्यासियों और जोगियों में भी अनेक फिरके थे किन्तु उनमें लोकदिखावा मात्र रह गया था।''[20]

2.1.4 भक्ति आन्दोलन और गुरु जम्भेश्वर जी -

महात्मा कबीरदास ने निर्गुण उपासना की जो धारा बहाई, वह अपने ही घाट से बहती हुई आगे निकल गई। जिन भारतवासियों पर इस धारा का प्रभाव है, वे जात-पात के मामले में काफी उदार है और धार्मिक असहिष्णुता भी उनमें अपेक्षाकृत बहुत कम है। परन्तु कबीर के तुरन्त बाद जो सगुणोपासक की धारा उमड़ी, उसने सम्पूर्ण संस्कृति और साहित्य को प्लावित कर दिया। इस धारा के कवियों और संतों में पांडित्य भी है और सहृदयता भी। उनमें आक्रोश और कटुता के वे भाव भी नहीं हैं जो कबीर और उनके अनुयायियों में दिखाई पड़ते

हैं। यह धारा आत्मविश्वास से जगमगाते हुए मूल हिन्दुत्व की धारा है। इसमें न तो नकारात्मकता है, न अपने आप पर झेंपने या शर्माने की प्रवृत्ति। कबीर ने राम मंत्र तो रामानंद से लिया था, किन्तु वेदांत और इस्लाम से अर्जित निराकारवादी संस्कारों के कारण उन्हें राम को दशरथ का पुत्र मानने में झिझक और कठिनाई हुई है। किन्तु जब तुलसीदास आए, उन्होंने डंके की चोट से, यह घोषणा कर दी है कि हां, मेरा उपास्य वही राम है जिसने दशरथ के घर में अवतार लिया था।

जहां-जहां तुलसीदास को यह बताने का अवसर मिला है कि मैं जिस राम का भक्त हूँ, वह राजा दशरथ के पुत्र हैं, वहां-वहां उनके भीतर एक अद्‌भुत उत्साह, एक सचेष्ट निर्द्वन्द्वता, एक प्रकार की शालीन वीरता का निर्भीक तेज देखते हैं, मानो वे किसी से ललकार कर कहना चाहते हों, कि मैं उसी राम का भक्त हूँ, जिसे तुम माया की कृति कहते हो, जिसे तुम मनुष्य मानते हो, और जिसका उपासक होने के कारण तुम, कदाचित मुझे अन्धविश्वासी और मूढ़ भी समझते हो।

तुलसीदास के भीतर से यह और कोई नहीं, स्वयं हिन्दू धर्म बोल रहा था। क्योंकि तुलसीदास स्वयं हिन्दू संस्कारों में पले-बड़े हुए थे। वे राम के बड़े उपासक थे। फिर भी आज उन्हें महान वैष्णव संत माना जाता है और वे कोटि-कोटि स्त्री-पुरुषों के हृदय में अपनी अमर कृतियों, विनय पत्रिका और रामचरितमानस को बैठा गए। इन कृतियों के अतिरिक्त गीतावली, कवितावली, बरवैरामायण आदि रचनाओं का सृजन करके भक्ति आंदोलन के उत्थान और विकास में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान दिया। कबीरदास तथा तुलसीदास के समकालीन महान संत सुधारक जाम्भोजी का आविर्भाव हुआ। कबीरदास के विपरीत तुलसीदास सगुणवादी विचारधारा के प्रचारक थे, जबकि कबीरदास निर्गुणवादी विचारधारा के प्रतिपादक थे। जाम्भोजी ने इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित करके सगुणोन्मुखी निर्गुण भक्ति का उपदेश दिया। अर्थात् उनकी दृष्टि में ईश्वर सगुण भी है और निर्गुण भी है। उनकी 'सबदवाणी' वेदवाणी मानी जाती है, इसलिए वे वैदिक धर्म और वैदिक देवताओं में

आस्था रखते थे। अवतारवाद को मानते थे। विष्णु के सभी अवतारों को वे अपना ही स्वरूप मानते थे। अपने उपदेशों को वे वैदिक उपदेश मानते थे। उन्होंने सन् 1485 में सम्भराथल ध ोरे पर पवित्र कलश स्थापित करके बिश्नोई धर्म की स्थापना की। बिश्नोई धर्म एक पवित्र आचार-संहिता पर आधारित मत है जो सदाचार पर आधारित होने के कारण आत्मशुद्धि व आचरण शुद्धता को महत्व देता है। उन्होंने सिद्धान्त से ज्यादा आदर्श को अपनाया और चिंतन की अपेक्षा व्यावहारिकता को अधिक महत्व दिया। इसलिए चिंतन और सिद्धान्त पक्ष की अपेक्षा आदर्श और व्यवहार को भक्ति का प्रमुख आधार माना है। उन्होंने आदर्श और व्यवहार को भक्ति का प्रमुख आधार माना है। उन्होंने आदर्श और व्यवहार का समन्वय करके एक ऐसी भक्ति पद्धति का विकास किया जो केवल विष्णु जप को ही भक्ति का केन्द्र बिन्दु माना है। जिसमें मनुष्य अपने बाह्य कार्यों को करता हुआ आन्तरिक रूप से विष्णु जप को अहर्निश रूप से करता रहे। प्रत्येक मनुष्य को नित्यप्रति प्रात: और सुबह दोनों समय संध्यामंत्र का जप करना उनकी भक्ति का दैन्यदिनी कार्यक्रम है। इस मंत्र में विष्णु जप के लाभ बताए गए हैं।

गुरु जम्भेश्वर जी ने अपनी बाणी में गुरु को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया है। गुरु की पहचान करने की बात उन्होंने जम्भवाणी के प्रथम 'सबद' में ही उच्चारित की है। गुरु की पहचान उनकी गरिमा, ज्ञान और आध्यात्मिक उन्नति से ही होती है। सबसे पहले गुरु की पहचान करनी है। गुरु स्वयं धर्मोपदेशक, शीलवान, सहजवान और संतोषी वृत्ति वाला होना चाहिए। सद्गुरु की महिमा अपरम्पार है। सद्गुरु ही आदि पुरुष है। आदि पुरुष को स्मरण करने से परम् मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। आदि गुरु को पहचानने से ईश्वर का मार्ग स्वयं ही मिल जाएगा। यदि मनुष्य को ईश्वर (विष्णु) का ज्ञान नहीं हुआ तो मानव जीवन व्यर्थ ही चला जाएगा। इसलिए सत्गुरु जाम्भोजी ने मानव को युक्तिपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देते हुए मृत्यु के उपरांत मुक्ति प्राप्त करने की प्रेरणा दी है। मुक्ति तभी प्राप्त होगी जब मनुष्य कैवल्य ज्ञान को प्राप्त करेगा। ऐसा ज्ञान तो शाश्वत सत्य पर आधारित है, जिसका विकल्प कोई दूसरा ज्ञान नहीं हो सकता। कैवल्य ज्ञान ही गुरु कृपा का प्रसाद है। यह गुरु की प्रसन्नता का प्रतिफल

है। यही सतपंथ का रास्ता है। इसी सतपंथ पर अग्रसर होकर मुक्ति प्राप्त करना है।

गुरु जाम्भोजी के काल में भक्ति की दो धाराएं चल रही थीं। एक निर्गुण तथा दूसरी सगुण भक्ति धारा। ये दोनों ही विचारधारा दो विरोधी भाव धाराओं में विभक्त थी। निर्गुण भक्ति की दो शाखाएं थीं। एक ज्ञानाश्रयी काव्यधारा और दूसरी प्रेमाश्रयी काव्य शाखा। इसमें प्रथम के उन्नायक महात्मा कबीर थे और द्वितीय के जायसी। वैसे तो सूफी साधना का प्रचलन भारत में जायसी से पहले ही हो चुका था। निर्गुण संतों की साधना का स्पष्ट संकेत नामदेव और ज्ञानेश्वर ने कबीरदास से पूर्व ही दे दिया था। कबीर, नानक, दादूदयाल के पूर्ववर्ती संतों पर, यहां तक कि जायसी आदि कुछ सूफियों पर भी सिद्धों व नाथों की भाव धारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।

इसी कारण में निर्गुण मतावलम्बी सम्प्रदायों में आगे जाकर अनेक पंथ चल पड़े। ज्ञानाश्रयी शाखा के अन्तर्गत कबीरपंथ, दादूपंथ, नानकपंथ, सेनपंथ, बावरीपंथ, मलूकपंथ, रविदासपंथ, निरंजनी सम्प्रदाय आदि अनेक प्रशाखाएं थीं। इसी प्रकार प्रेमाश्रयी सूफी शाखा के अन्तर्गत चिश्ती सम्प्रदाय, सुहरावर्दी सम्प्रदाय, कादरी और नक्शबंदी आदि अनेक उपशाखाएं बन गईं।

सगुण भक्तिधारा के अन्तर्गत कृष्णभक्ति और रामभक्ति के रूप में दो शाखाएं थीं। इस भक्ति धारा के मूल स्त्रोत अति प्राचीन हैं जो कि दक्षिण से आलवार भक्तों की वाणी में कभी अपना सबल रूप दिखा चुकी है। परिस्थितिवश यह उत्तर भारत में जरा देर से प्रवाहित हुई। लेकिन प्रवाहित हुई तो सारे उत्तर भारत को सहज ही अपनी लपेट में बहा ले गई। इस अवतारवादी वैष्णव भक्तिधारा में अवरोध का प्रमुख कारण शंकराचार्य का पूर्ण अद्वैतवाद और मायावाद रहा है। यह दर्शन वैष्णव भक्ति के प्रभाव में केवल अवरोधक ही नहीं बना, वरन् इसने नाथों-सिद्धों की साधना पद्धतियों और निर्गुण निराकार की उपासना को भी प्रोत्साहन दिया।

जिस प्रकार कबीर ने निर्गुण भक्ति को प्रोत्साहन दिया और तुलसीदास ने सगुण भक्ति धारा के मार्ग को अपनाया। उसी प्रकार गुरु जाम्भो जी ने निर्गुण तथा सगुण भक्ति धारा का समन्वय करके सगुणोन्मुखी निर्गुण भक्ति को प्रोत्साहन देकर सगुण तथा निर्गुण के भेदभाव को समाप्त कर दिया। अर्थात् ईश्वर सगुण रूप में भी है और निर्गुण अर्थात् निराकार रूप में भी। उन्होंने बताया कि सगुण रूप में मैं स्वयं विष्णु हूँ, विष्णु के जो नौ अवतार हुए हैं, वे मेरे ही स्वरूप हैं और निर्गुण रूप में ईश्वर सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं। वह निराकार, अनंत, असीम और सर्वव्यापक परमसत्ता है। परततत्व के रूप, रेख, लीक, चिन्ह, खोज, खेह आदि कुछ भी नहीं है। परमतत्व अज्ञेय, अगम्य तथा अजन्मा स्वरूप में स्थित शाश्वत, सनातन और स्वयंभू है। मेरा अलौकिक स्वरूप ऐसा ही है। मैं साकार और निराकार दोनों रूपों में पिण्ड और ब्रह्माण्ड में रम रहा हूँ, अनंत युगों में मैं एक रूप, एक स्वरूप व एकरस रहता हूँ।

वह परमतत्व (परमसत्त विष्णु) सातों पातालों, तीनों लोकों, चौदह भवनों, गहन आकाश में, बाहर और भीतर सर्वत्र, सर्वदा एकरूप है। यह परमतत्व जम्बूद्वीप में भी सर्वत्र व्याप्त है। ऐसे परमतत्व को जानने वाला ही सतपंथ पर अग्रसर हो सकता है। वह अनिर्वचनीय और अगोचर है। वह उत्पत्ति के साथ पैदा नहीं होता है और प्रलय के बाद उस परम विष्णु का विनाश नहीं है। मेरे ऐसे आदि स्वरूप या आदिमूल का रहस्य कोई-कोई ज्ञानी व्यक्ति जानता है। अर्थात् मैं जांभोजी के स्वरूप में सगुण विष्णु हूँ तथा परमतत्व के रूप में स्वयं निराकार, निर्गुण परब्रह्म हूँ। अर्थात् मैं स्वयं अनंत शक्ति युक्त ईश्वर हूँ। सृष्टि से पूर्व मैं निराकार, निरंजन और स्वयंभू के स्वरूप में था। जब-जब ईश्वर का अवतार होगा मैं सगुणरूप में पृथ्वी पर अवतरित होऊँगा। अर्थात पापवृत्ति को समाप्त करने और धर्मवृत्ति को स्थापित करने के लिए मैं बार-बार पृथ्वी पर अवतरित होता हूँ। यदि मनुष्य विष्णु जप की भक्ति को निरंतर करता रहे तो वह संसार सागर से पार हो सकता है। मानव-जीवन के कल्याण के लिए विष्णु भक्ति रामबाण है। मनुष्य की आयु प्रतिक्षण घटती जा रही है और मृत्यु निकट आ रही है। इसलिए हे प्राणी ! तू निरन्तर विष्णु जप कर। जैसे पाई-पाई करके लाखों रुपये एकत्रित हो जाते हैं,

वैसे ही निरन्तर विष्णु जप की भक्ति से अनंत पुण्य संचित हो जाते हैं। इससे जरा-मृत्यु का भय दूर हो जाता है और जीव को वैकुण्ठवास मिलता है। दिन-रात तुम्हारी आयु घटती जा रही है। एक सांस लेना भी देर करना है। एक सांस लेने में जितनी देर भी विष्णुनाम जप में नहीं करनी चाहिए, एक-एक सांस लेना भी देर का सूचक है।

"इसके अतिरिक्त गुरु जाम्भो जी ने भक्ति को अजपाजप विधि से करने का उपदेश दिया है। यह नामस्मरण या नामजप की वह पद्धति है, जिसमें बाह्य साधनों के अलावा जप की क्रिया अपने आप चलती है। इस जप विधि में चित्त की एकाग्रता, मन व चिन्तन में स्वाध्याय की भावना उत्पन्न होती है। गोरखनाथ ने अपनी वाणी में अजपाजप नाम स्मरण को महत्वपूर्ण माना है।"[21]

नामजप के साथ उन्होंने भक्ति के अनेक आयामों का वर्णन भी अपनी वाणी में किया है। उनकी वाणी में सहज-साधना की एक विशिष्ट पद्धति को अपनाने व उस पर चलने का उपदेश दिया गया है। उन्होंने उन धार्मिक क्रियाओं को करने का धर्मोपदेश दिया है जो सहजता को प्रोत्साहन देती है। जाम्भोजी से पूर्व सहज-साधना को बौद्ध और नाथ सिद्धों ने अपनाया है। सहज साधना योग की विविध प्रक्रियाओं से गुजरती हुई चित्त, प्राण, शुक्र और कुण्डलिनी तक पहुंचती है। ऐसा विश्वास किया गया है कि इनमें से किसी एक को वश में कर लेने से शेष सभी वश में हो जाते हैं और मनुष्य मनोवांछित फल पा लेता है। इसको वश में करने के लिए राजयोग, हठयोग, जपयोग, कुण्डलिनी योग तथा वज्रोलिका, वज्रयान, सहजयान आदि विविध योगमार्गों की प्रतिष्ठा होती है। परमतत्व को खोजने के लिए किसी बाह्याडम्बर की आवश्यकता नहीं होती है, बल्कि अंत:करण में चंचल तत्वों को स्थिर करने से ही सारी सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं। इससे सबसे बड़ी सिद्धि मोक्ष या निर्वाण भी हो जाता है। "गुरु जाम्भो जी अपनी साधना को व्यवहारवादी मानते हैं। अत: किसी भी व्यक्ति, वस्तु, आस्था और विश्वास की सबसे बड़ी कसौटी वे व्यवहार को मानते हैं। उनकी कथनी-करनी में एकरूपता होना ही सबसे बड़ी व्यावहारिकता है। जिसकी कथनी-करनी और रहनी में

ताल-मेल न हो, उसे वे पाखंडी मानते हैं। व्यक्ति स्तर पर मनुष्य की पहचान उसकी रहनी से ही होती है और सामाजिक स्तर पर उसकी करनी से। सहज साधना के साथ-साथ वे मानव जीवन के संतुलित जीवन विधि के समर्थक थे। इसलिए उनका प्रत्येक कार्यक्षेत्र सन्तुलित विचारधारा पर आधारित है। कहीं भी किसी भी विद्या के लिए उनका अतिवादी दृष्टिकोण नजर नहीं आता है। असन्तुलित जीवन प्रत्येक कार्य, विषय और क्षेत्र में विभेद उत्पन करके मनुष्य के जीवन में अराजकता, संशय और विभेद उत्पन्न कर देता हैं इस प्रकार का विभेद परिवार, समाज और राष्ट्र के लिए हितकारी नहीं होता।''[22]

जाम्भोजी ने अपनी सहज साधना में शीलधर्म, संतोषवृत्ति, परोपकार, त्याग, तप, संयम, अहिंसा, प्रेम, सच्चाई, न्यायशीलता, ईमानदारी, नामजप, नित्यप्रति स्नान, अमावस्या व्रत, नित्यप्रति हवन, दया, हरिस्मरण, दोनों समय संध्या और विष्णु भजन, शुचिता का पालन, सत्यवचन, क्षमा की भावना रखना, चोरी, निंदा, असत्य वचन का परित्याग, वाद-विवाद का परित्याग, जीवदया, प्रकृति रक्षा, विषयविकारों का परित्याग, मद्य-निषेध, ऊँच-नीच की भावना न रखना, अतिथि सेवा की भावना इत्यादि नियमों को सहज साधना में माना है। ऐसी सहज साधना व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी है। इन साधनाओं के अतिरिक्त गुरु जाम्भोजी ने लोककल्याण, लोकमंगल और लोकसमृद्धि को महत्वपूर्ण साधन माना है। ऐसी सहज साधना व्यक्ति तथा समाज के लिए उपयोगी है। इन साधनाओं के अतिरिक्त गुरु जाम्भोजी ने लोककल्याण, लोकमंगल और लोकसमृद्धि का महत्वपूर्ण साधन माना है। उनके जीवन का प्रमुख ध्येय मानव कल्याण था। इसलिए प्रत्येक स्थिति में उन्होंने मानव को सही दिशा-निर्देश का अमर संदेश दिया है। इसी कारण उन्होंने मानवता के दु:ख-दर्द को अपना समझकर अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व और कृतित्व को प्राणीमात्र की सेवा में समर्पित कर दिया। यहां तक कि अपनी पैतृक सम्पत्ति को त्यागकर अपने आपको प्राणीमात्र की सेवा में लगा दिया और सम्भराथल धोरे पर उन्होंने 51 वर्ष तक लोगों को सदुपदेश दिए।

वे एक सच्चे साधक, परोपकारी महात्मा तथा अवतारी पुरुष थे। वे सम्पूर्ण मानव

जाति, समग्र विश्व और प्राणीमात्र के परम रक्षक थे। वे जन्मजात योगी, पूर्णसिद्ध और स्वयं सिद्ध थे। उन्हें किसी साधारण मनुष्य की भाँति कोई साधना करने की आवश्यकता न थी क्योंकि जन्म से सिद्ध एवं प्रसिद्ध थे। वे स्वयं को युगानयुग का जोगी निर्दिष्ट करते थे। जाम्भोजी उस असीम व अनंत विष्णु की सेवा में प्रत्येक मनुष्य को सदैव दत्तचित्त रहने का उपदेश देते थे। सादगी, सरलता और सात्विकता एवं शांति उनके स्वभाव में गहन रूप में सन्निहित थे। सत्य, अहिंसा, शील और संतोष उनके व्यक्तित्व के साथ एकाकार हो चुके थे। लोक कल्याण, विनीत भाव और विनम्रता उनके सरल हृदय की विशिष्टता थी। स्पष्टवादिता, स्वाभिमान, लोकमर्यादा, स्वस्थ एवं स्वतंत्र विचार उनके स्वभाव की विशिष्टता थी। निर्भीकता उनके निर्मल मनोबल का प्रमाण थी तो स्वच्छ मनोवृत्ति उनके सरस आत्मबल के अनुनय का आधार थी। आकर्षक व्यक्तित्व, हृदयग्राही स्वभाव और मानसिक सतर्कता उनके असाधारण जीवन की ज्योतिर्मय विशिष्टता थी।

इस विशिष्टता के कारण गुरु जाम्भोजी की भक्ति-परम्परा एवं पद्धति का जनसामान्य से लेकर राजा-महाराजाओं तक व्यापक प्रभाव पड़ा था। उनके अनुसार मनुष्य सीधा-सच्चा गृहस्थ जीवन व्यतीत करता हुआ परमपद की प्राप्ति कर सकता है। इसके लिए किसी बाह्याडम्बर, तंत्र-मंत्र और दिखावे की आवश्यकता नहीं है। ऐसी सहज साधना में सांसारिक समन्वय और मानव एकता की भावना सन्निहित है। वे मानवता के सच्चे अनुयायी थे। वे उन सभी बाह्याडम्बरों के विरोधी थे जो जीवन को अनावाश्यक पूर्वाग्रहों और प्रचलनों में डालकर जड़ और निष्क्रिय बना देते हैं। उन्होंने सिद्धों व नाथों की भ्रामक उपासना, कुत्सित जीवन पद्धति को आडम्बरपूर्ण माना है। जिसका एकमात्र उद्देश्य चमत्कारपूर्ण कार्यों का दिखावा मात्र है। ऐसी उपासना पद्धतियों व जादू-टोनों का उन्होंने खुलकर विरोध किया है। जो जन साधारण के लिए अत्यन्त दुष्कर मानी जाती है।

गुरु जाम्भोजी की साधना तो सदाचार से युक्त थी और सबका कल्याण उस साधना का मूल उद्देश्य था। सादा जीवन और उच्च विचार उनकी साधना का मूलमंत्र था। वे शास्त्रीय

धर्म के स्थान पर लोक-धर्म को महत्व देते थे और जटिलतावादी साधना के स्थान पर सरलतावादी साधना को अपनाने की प्रेरणा देते थे, जो व्यवहार में आचारप्रधान हो। लोक-धर्म में सरल और सहजतायुक्त हो। ऐसी उपासना पद्धति को उन्होंने जीवन के आचरण में क्रियान्वयन का उपदेश दिया। उनकी वाणी में ही उनके अनुभवजन्य विचार सन्निहित थे। उनका आत्मानुभव स्वभावगत स्वानुभूति एवं आत्मानुभूति पर आधारित था, जिसमें आत्मीयता, जिज्ञासा, पीड़ानुभूति आदि स्वाभाविक उद्‌गार आदि समाविष्ट थे। ये उद्‌गार उनकी वाणी में स्वत: प्रकट होते थे। उनके जीवन तथा व्यक्तित्व के विषय में केवल लौकिक पक्षों का ही विवेचन किया गया है। उनका अलौकिक स्वरूप विष्णु का रूप था, इसलिए उनके अवतारवादी स्वरूप तथा आदिमूल की पृष्ठभूमि पर शोध होना आवश्यक है। वे मन, वचन और कर्म से एकरूप थे। यह एकरूपता उनके सम्पूर्ण जीवन में दृष्टिगोचर होती थी।

जाम्भोजी अपनी वाणी में प्रश्नोत्तर शैली के माध्यम से अपने अनुयायियों की जिज्ञासा निवारण किया करते थे। उनके विचारों में कहीं भी कटुता तथा आक्रोश नहीं था जैसा कि कबीर की वाणी में सुझाव और सम्मति है। जिज्ञासा का समाधान भी है, अध्यात्म की सभी जिज्ञासाओं का उन्होंने सीधा और सटीक प्रत्युत्तर दिया है। गुरु जाम्भोजी स्वयं प्रखर बुद्धि ब्रह्मज्ञानीद तथा प्रत्युत्पन्नमति के महान विश्वात्मा थे। जो भी बातें अपने अनुयायियों से कहते उस पर स्वयं पहले आचरण करते और बाद में उनका उपदेश देते थे।

उनकी वाणी में सहजता और आत्मोत्थान का सामंजस्य है। वे जो सदुपदेश या प्रवचन जनसामान्य को देते उनका व्यापक प्रभाव पड़ता था। उनका प्रत्युत्तर प्रभावशाली और सटीक होता था। उन्होंने अपनी साधना और उपदेशों द्वारा उन सभी मिथ्या मान्यताओं एवं कुसंस्कारों का खण्डन किया तो तद्‌युगीन समाज को धर्म-साधना के रूप में विद्यमान थे। जाम्भोजी के व्यक्तित्व और कृतित्व एवं स्वभाव की अमिट छाप का कारण उनका कर्ममय जीवन, दृढ़ता, लोकमर्यादा, स्पष्टता, उदात्तता, विशिष्टता थी। जिसके कारण मध्यकालीन भक्ति आंदोलन को एक व्यापक धरातल मिला था जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि भक्ति को दक्षिण से

उत्तर भारत में लाने वाले रामानंद थे और इसका व्यापक प्रचार-प्रसार करने वाले कबीर थे। परन्तु राजस्थान में इसका व्यापक प्रचार-प्रसार करने वाले जाम्भोजी थे। गुरु जाम्भोजी ने राजस्थान में इस भक्ति आन्दोलन को एक सुनिश्चित दिशा प्रदान की। जिसका राजस्थान की जनता पर अत्यन्त व्यापक प्रभाव पड़ा। उन्होंने विष्णु भक्ति को आचारवान बनवाकर पूरे भारत में भ्रमण किया, लोगों को सात्विक संस्कारों, उच्चादर्शों और सद्गुणों को जीवन में उतारने और उस पर चलने की प्रेरणा दी। परिणामस्वरूप बिश्नोई जीवन पद्धति को सभी लोग स्वीकार करने लगे। यह बिश्नोई पंथ धीरे-धीरे राजस्थान के बाहर भी फैलने लगा। उन्नतीस धर्म-नियमों की आचार संहिता इतनी व्यावहारिक थी। इतनी सदाचारयुक्त और सहज थी कि सभी लोग इस आचार-संहिता को अत्यन्त पवित्रता की दृष्टि से देखने लगे। उनका परिणाम सकारात्मक लगने लगा। सभी जातियों व धर्मों के लो बिश्नोई धर्म से प्रेरणाप्रद और प्रेरित होने लगे। धीरे-धीरे यह पंथ अपनी सात्विक वृत्ति, पवित्र धारणा और शुद्ध संस्कारों के कारण अपनी एक अलग पहचान बना ली। प्रकृति रक्षा, पर्यावरण सुरक्षा, जीवदया तथा पेड़-पौधों के संरक्षण व संवर्द्धन के लिए आत्मबलिदान देकर विश्व में एक अलग पहचान बना ली। आज सम्पूर्ण विश्व में पर्यावरण संरक्षण के लिए बिश्नोई पंथ की अहम् भूमिका है। जीवरक्षा तथा वृक्ष संरक्षण के लिए अपने प्राणों की आहुति देना इस पंथ की महत्वपूर्ण भूमिका बन गई है। सारांशत: यह तथ्य समीचीन प्रतीत होता है कि गुरु जाम्भोजी प्रवर्तित बिश्नोई पंथ का राजस्थान के मध्यकालीन परिवेश को एक नई समृद्धता प्रदान की है, जिसमें नामजप, गुरु कृपा ज्ञान, आत्मशुद्धि, सदाचार, शील, संतोष, परोपकार आदि सद्गुणों से भारत की संस्कृति को व्यापक, विस्तृत और समृद्ध बनाया है, जिसका प्रभााव युगों-युगों तक रहेगा।

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि इतिहास के चार अंगों में व्यक्ति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। उसकी परिस्थितियाँ उसके व्यक्तित्व को जुझारू एवं विवेकी बनाती है तथा व्यक्तित्व समकालीन परिस्थितियों के समाधान में अपनी मेधा का अद्वितीय उपयोग करता है। समाज उसका नेतृत्व पाकर अपनी बहुआयामी विषमताओं की समाप्ति की आशा से भर उठता

है। जाम्भोजी महाराज का व्यक्तित्व इन कसौटियों पर खरा ही नहीं उतरा अपितु उन्होंने एक नये सम्प्रदाय की स्थापना की जो आज भी उनके निर्देशों का पालन करते हुए अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है।

2.2 बिश्नोई : सम्प्रदाय, समाज एवं साहित्य

पूर्व मध्यकाल में पूरा देश एक ओर इस्लामिक आक्रामकता का शिकार था तो दूसरी ओर राजे-महाराजे आपसी ईर्ष्या-द्वेष की आग में झुलस रहे थे तथा जनता को भी झुलसा रहे थे। तीसरी ओर समाज अंधविश्वासों की तपिश को सह रहा था। ऐसी स्थिति में भारत में उठे भक्ति आन्दोलन के परिणाम स्वरूप राजस्थान में जाम्भोजी महाराज का प्रादुर्भाव होता है। उन्होंने राजस्थान को तीनों विषमताओं से मुक्ति दिलाने के लिए जिस मत का प्रादुर्भाव किया वह बिश्नोई पंथ कहलाया। इस सम्प्रदाय में अनेक लोग दीक्षित होने लगे और एक नया समाज 'बिश्नोई समाज' बनता चला गया। इस समाज को मत पंथ के दिशा निर्देश देने के लिए जो साहित्य समय-समय पर लिखा गया वह 'बिश्नोई साहित्य' कहलाया। यहाँ इन तीनों का ही परिचय एवं विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस प्रदेश का नाम राजस्थान या रायस्थान प्रसिद्ध इतिहास लेखक जेम्स टॉड ने दिया था। यह नाम राजाओं या उनके राज्यों के स्थान का सूचक है। अंग्रेजों से पहले यह सारा प्रदेश इस नाम से प्रसिद्ध रहा हो, इसका उदाहरण प्राचीन ग्रन्थों में नहीं मिला है। "इस प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों के अलग-अलग नाम मिलते हैं यथा जांगल देश, बागड़ देश, मत्यस्य देश, शूरसेन देश, सपालदक्ष, मेदपाट, हाड़ौती, मारवाड, ढूंढाड़, शेखावटी, तोरावाटी, आदि। इस प्रदेश का अधिकतर क्षेत्र रेतीला है, इस कारण इसका नाम तीला मरुस्थल भी है।"[23]

भारत का यह मरुस्थल उत्तर-पूर्व में पंजाब-हरियाणा तथा उत्तरप्रदेश से, दक्षिण पूर्व में मध्य प्रदेश से, पश्चिम में गुजरात एवं सिन्ध से घिरा हुआ है।

मरुस्थल की जलवायु - इस क्षेत्र की प्राकृतिक विषमता शुष्क जलवायु के रूप में विद्यमान है। यह नये मानवीय मूल्यों को शीघ्र प्राप्त करने में हमेशा बाधक रही है। परन्तु जो मूल्य इस कठिन परिवेश में स्थापित हो गए थे, उन्हें कोई बाह्य प्रभाव मिटा न सके थे।

राजपूताने के पश्चिमी रेगिस्तानी विभाग में पूर्वी विभाग की अपेक्षा वर्षा कम होती है। जैसलमेर में वर्षा का औसत 7 इंच, बीकानेर में 12 इंच और जोधपुर में 13 इंच है।

रेगिस्तानी भूमि उपजाऊ नहीं है। यह भूमि मुख्यतया जैसलमेर, बाड़मेर, बीकानेर, जोधपुर, सीकर, चुरू, झुंझनू, नागौर, हनुमानगढ़ एवं गंगानगर जिलों में है। इस भूमि में 95 प्रतिशत रेत और पाँच प्रतिशत चिकनी मिट्टी होती है। इसमें अघुलनशील लवणों की मात्रा अधिक है। पाउलेट ने डॉ. मूरे की जाँच का उद्धरण दिया है, जिसने नोखा में 400 फीट एक गहरा कुआँ देखा था। बीकानेर में पानी 300-400 फीट की गहराई में है।

मरुस्थल का प्रभाव - राजस्थान एक शुष्क मरुस्थल है। इस प्रदेश के मरुस्थल होने के कारण ही राजपूत राजाओं के दुर्ग बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित बने रहे थे। वे अपनी विशेष भौगोलिक स्थिति के कारण ही, कई बार मुगल सम्राटों द्वारा पराजित किए जाने पर भी वे अपने शासन प्रबन्ध में स्वतंत्र बने रहे थे। यहाँ की विपरीत भौगोलिक स्थिति के कारण ही बादशाह शेरशाह सूरी ने सामेल (मारवाड़) का युद्ध जीतकर भी कहा था - "एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए मैं हिन्दुस्तान की बादशाहत खो देता।"[24]

2.2.1 बिश्नोई सम्प्रदाय -

संस्थापक - 15वीं शताब्दी भारतीय इतिहास में अपना विशेष महत्त्व रखती है। इस समय देश में अनेक उथल-पुथल मची हुई थी। ऐसे समय में यहाँ के संतों का भी विशेष कार्य रहा था। दक्षिण भारत में भक्ति आंदोलन का सूत्रपात हुआ। शनै-शनैः इसका प्रभाव महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तरप्रदेश और पंजाब में भी होने लगा था। इससे राजस्थान भी अछूता न रहा। "राजस्थान में इस आन्दोलन के सूत्रपात करने वाले परम आत्मा थे - गुरु जाम्भोजी। गुरु जाम्भोजी ने एक साधारण किसान से लेकर राजा-महाराजाओं को उपदेश दिया था। उनके उपदेशों से धार्मिक क्षेत्र में जो क्रांति आई थी, उसका प्रभाव राजनैतिक क्षेत्र में भी हुआ था।"[25]

बिश्नोई सम्प्रदाय की उत्पत्ति - गुरु जाम्भोजी आजीवन ब्रह्मचारी रहे थे। वि. सं. 1540 (1483 ई.) की चैत्र शुक्ला 9 का इनके पिता लोहटजी का तथा इसी वर्ष भादो की पूर्णिमा को इनकी माता हांसादेवी का देहान्त हो गया था। "तब आप अपना घर तथा सारी सम्पत्ति

का परित्याग करके संभराथल नामक स्थान पर रहने लगे थे। वहाँ वे सत्संग तथा हरिचर्चा में अपना समय बिताने लगे थे।''[26]

वि. सं. 1542 (1485 ई.) कार्तिक कृष्णा अष्टमी को इसी धोरे पर स्नान करके जप करते हुए उन्होंने कलश स्थापना करके बिश्नोई पंथ की स्थापना की थी।

कलश स्थापना एवं यज्ञ के बाद गुरु जाम्भोजी ने जल को अभिमंत्रित करके 'पाहल' बनाया था। इसी पवित्र जल 'पाहल' को पिलाकर आज्ञानुवर्ती समुदाय को बिश्नोई पंथ में दीक्षित किया था। सर्वप्रथम गुरु जाम्भोजी के चाचा पूल्होजी इस नवीन पंथ में दीक्षित हुए थ। लोगों को बिश्नोई बनाने का कार्य अष्टमी से अमावस्या तक लगातार चलता रहा था। यह अमावस्या सोमवती थी, अत: पंथ स्थापना की अष्टमी भी सोमवती थी।

पंथ की स्थापना के बाद गुरु जाम्भोजी ने पंथ को सुचारू रूप से चलाने के लिए इसकी एक आचार-संहिता स्थापित की थी।

सम्प्रदाय का नामकरण - समय, परिस्थिति, क्षेत्र विशेष, व्यक्ति विशेष एवं भाषा के प्रभाव से 'बिश्नोई पंथ' का नाम अलग-अलग रूप में प्रयोग हुआ है।

अधिकतर बिश्नोई कवियों ने इस पंथ का वैष्णव, विष्णोई, विश्नुई, बिसनोई आदि नाम का प्रयोग किया है। पंथ के बीस और नौ (29) धर्म नियम तथा विष्णु की उपासना का विधान होने के कारण पंथ के लोग बिश्नोई कहलाने लगे। कुछ विद्वानों का मत है कि 'विष्णु स्नेही' होने के कारण वे बिश्नोई कहलाये। अन्य विद्वानों का मत है कि वे वैश्वानर (अग्नि) के पूजक होने के कारण 'बिश्नोई' कहलाने लगे।

बिश्नोई प्रहलाद को बहुत मानते हैं, इसलिये बिश्नोई पंथ का एक नाम प्रहलाद पंथ भी है। प्रहलाद ने विष्णु का स्मरण किया था और नृसिंह विष्णु का एक रूप था। प्रहलाद के साथ मुक्ति प्राप्त करने वाले प्रहलाद पंथी कहलाये थे। प्रहलाद पंथ के - पंथ पसलाद, वाट-पसलाद और पहराज धरम नाम विशेष प्रचलित हैं।

विश्नोई धर्म विवेक के अनुसार बिश्नोई शब्द एक मत का ही वाचक है। अर्थात बिश्नोई एक मत वा पंथ का नाम है। परन्तु मत के विशेष संबंध से यह बिश्नोई शब्द जाति

परक हो गया है - जैसे बौद्धमत। "इस समुदाय में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और जाट, चौहान जाति के मनुष्य हैं"[27] जम्भसागर में भी बिश्नोई पंथ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आदि चार वर्ण बताये हैं।

2.2.1.1 सम्प्रदाय का स्वरूप - मूलत: यह एक धार्मिक सम्प्रदाय है। परन्तु यह तत्कालीन समाज, राजनीति और अर्थनीति से स्पष्ट प्रभावित दिखाई देता है। वस्तुत: तत्कालीन राजस्थान समाज की दुर्दशा को दूर करने के लिए इस पंथ का प्रादुर्भाव हुआ। "समाज को कुछ नैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक सीमाओं में बांधकर चलने का संकेत इसमें है। इस सम्प्रदाय में निराकार विष्णु की पूजा का विधान रखा गया है। अवतार पूजा का निषेध करके यज्ञ इसमें नित्य कर्म बताया गया है।"[28]

गुरु जाम्भोजी सन् 1483 के आस-पास संभराथल के धोरे पर आ बैठे थे। मरुस्थल में उस समय भीषण अंकाल पड़ा था। तब गुरु जाम्भोजी ने लोगों की अकाल से रक्षा की थीं। उन्होंने उसी समय कलश की स्थापना की थी। कवि सेवादासजी के अनुसार उन्होंने कार्तिक बदी अष्टमी, वि. सं. 1542 (1485 ई.) को बिश्नोई पंथ की स्थापना की थी। गुरु जाम्भोजी ने मनुष्य को अच्छे कर्म करने के आधार को उत्तम माना था। वे समन्वयवादी विचारधारा के प्रवर्तक थे। उन्होंने हिन्दू-मुसलमान, ब्राह्मण-क्षत्रिय, वैश्य-शूद्र, स्त्री-पुरुष, जाट-भाट, जोगी-दरवेश में कोई भेद नहीं किया था और इस पंथ पर चलने का संदेश दिया था। गुरु जाम्भोजी ने कहा - "उत्तम मध्यम क्यूं जाणीजै, विवरस देखो लोई।" मनुष्य की मुक्ति इसी जन्म में ही संभव है। उसे यह देखना है कि उसके जीने की विधि क्या है? जिन्होंने जीने की विधि को जान लिया है, उसका जीवन सफल हो गया। गृहस्थाश्रम में रहकर ही एक साधारण मनुष्य कैसे उत्तम जीवन जी सकता है, इसके लिये उन्होंने एक आचार-संहिता बनाई। इन नियमों की सर्वप्रथम व्याख्या गुरु जाम्भोजी की वाणी के आधार पर कवि ऊदोजी ने की थी। बिश्नोई पंथ के नियम निम्नानुसार हैं -

1. "तीस दिन तक सूतक रखना।
2. पाँच दिन तक रजस्वाला स्त्री को गृह कार्यों से अलग रखना।

3. प्रातः काल स्नान करना।

4. शील (ऍडेल्ट्री), संतोष व शुद्धि रखना।

5. द्विकाल (प्रातः-सायं) सन्ध्या करना।

6. सायं को आरती करना।

7. प्रातःकाल हवन करना।

8. पानी, दूध, ईंधन को छान-बीन कर प्रयोग में लेना।

9. वाणी सोच-विचार पर शुद्ध बोलें।

10. क्षमा (सहनशीलता) रखें।

11. दया (नम्र भाव) से रहें।

12. चोरी नहीं करना।

13. निन्दा नहीं करना।

14. झूठ नहीं बोलना।

15. वाद-विवाद नहीं करना।

16. अमावस्या का व्रत करना।

17. विष्णु का भजन करना।

18. जीवों (प्राणियों) पर दया करना।

19. हरे वृक्ष नहीं काटना।

20. काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार (अजर) को वश में करना।

21. अपने हाथ से रसोई बनाना।

22. थाट अमर रखना।

23. बैल (बछड़े) को बधिया न करना।

24. अमल (अफीम) नहीं खाना।

25. तम्बाखू खाना-पीना नहीं।

26. भांग नहीं खाना।

27. मद्यपान नहीं करना।

28. मांस नहीं खाना।

29. नीले वस्त्र नहीं पहनना।''[29]

उनतीस धार्मिक नियमों का प्रभाव एवं महत्त्व - बिश्नोई लोक-कथाओं के प्रेरणा स्रोत, गुरु जाम्भोजी एवं उनके द्वारा प्रतिपादित 29 धार्मिक नियम ही हैं। धर्म तो धारणीय तत्त्व है, जिसने इसे सच्चे मन से धारण किया, उसका बेड़ा पार हो गया। इतिहास साक्षी है - जब कभी मनुष्य काम और अर्थ का सेवी बना, अशान्ति हुई। 15वीं शताब्दी के गुरु जाम्भोजी ने विष्णु की उपासना पर बल देकर धर्म का जय घोष किया। उन्होंने कहा - गंदे मत रहो, नहाओ, धोवो, सदाचार-संयम से रहो। आज इस वैज्ञानिक युग में सभी विद्वान इन नियमों के परिणाम से संतुष्ट हैं और इन्हें अपनाने में लगे हैं।

हरे वृक्ष कार्बन-डाईऑक्साईड ग्रहण करते हैं और ऑक्सीजन छोड़ते हैं। जबकि मनुष्य ऑक्सीजन लेता है और कार्बन-डाइऑक्साईड छोड़ता है। यदि इस प्रकार हरे वृक्षों की कटाई होती रही तो वह दिन दूर नहीं, जब इस विश्व में कार्बन-डाईऑक्साईड गैस ही चारों ओर होगी। ऑक्सीजन, (जिसे हम प्राण वायु कहते हैं) को बनाने वाले वृक्ष ही न रहेंगे, तब इस पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व ही न रहेगा। इस बात को गुरु जाम्भोजी ने पहचाना और सबसे पहले पर्यावरण सन्तुलन बनाये रखने का क्रांतिकारी कदम उठाया था। इस नियम को पालने के फलस्वरूप बिश्नोई पर्यावरण के प्रहरी कहलाये। हरे वृक्ष न काटना, सब प्राणियों पर दया करना, मांस न खाना, बैल बधिया न करना, अमर थाट रखना आदि नियमों के प्रचार-प्रसार से जहाँ एक ओर पशुओं को संरक्षण मिला है, वहीं दूसरी ओर लोगों में अहिंसा प्रवृत्ति बढ़ी है। विशेषकर बिश्नोई आज भी शुद्ध शाकाहारी भोजन करते हैं। गुरु जाम्भोजी की वाणी एवं 29 धार्मिक नियमों के आचरण से बिश्नोई समाज का संगठन कुछ इस प्रकार बन गया है कि उसकी अलग पहचान बनी है। समाज के संस्कारों पर भी गुरु जाम्भोजी की वाणी एवं उनकी आचार-संहिता का प्रभाव झलकता है। इसकी पूर्ण प्रणीती हमें बिश्नोइयों के मेलों, त्यौहारों एवं लोक तीर्थों में देखने को मिलती है।

2.2.1.2 सम्प्रदाय की मान्यताएँ - इस समप्रदाय के कुछ सैद्धान्तिक, साधनात्मक एवं नैतिक पक्ष हैं जो इस प्रकार हैं -

2.2.1.2.1 सैद्धान्तिक पक्ष - किसी मत-सम्प्रदाय में जो आधारभूत चिन्तन होता है वह उस पंथ का सैद्धान्तिक पक्ष होता है। बिश्नोई पंथ की सैद्धान्तिक अवधारणाएँ इस प्रकार हैं :-

1. **ब्रह्म निरूपण** :- गुरु जाम्भोजी निर्गुण ब्रह्म को मानते थे। उनका ब्रह्म - अजर, अमर, अलेख, अयोनी, अडोल है, जिसका कोई नाम रूप नहीं है। जो सात पातालों, तीन लोकों, चौदह-भुवनों, में बाहर-भीतर सर्वत्र विराजमान है और सबके दिलों में मौजूद है।

2. **जीवात्मा सम्बन्धी विचार** :- गुरु जाम्भोजी ने आत्मा को अजर, अमर और अतिसूक्ष्म बताया है। जैसे ऋतुएं बदलती हैं, वैसे ही आत्मा शरीर बदलती है। जीव जैसे कर्म करेगा, वैसी ही उस जीव को निम्न या उच्च योनि प्राप्त होगी। इसमें विष्णु का कोई दोष नहीं है। जीव में ईश्वर का वास होता है। जिस जीव में ईश्वर रूपी ज्योति का वास नहीं, उसकी मुक्ति नहीं होती है।

3. **जगत विषयक विचार** :- मृत्यु एक अनिवार्य सत्य है, जिसे टाला नहीं जा सकता। संसार नश्वर है और संसार का प्रमुख उपादान जीव भी क्षणभंगुर है। गुरु जाम्भोजी ने इस संसार का मिथ्या बताया है। ब्रह्म ने अपनी इच्छा से, जीवों का अपनी माया शक्ति से विस्तार किया है।

4. **माया सम्बन्धी विचार** :- जब जीव इस नश्वर जगत में आता है, तब ईश्वरीय रूप होता है। उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि नहीं होते। धीरे-धीरे उसमें नाम, जाति, आयु, वंश, वर्ग, धर्म आदि स्थापित होते हैं और अहम् की भावना स्थापित हो जाती है। गुरु जाम्भोजी ने कहा - मनुष्य स्वयं ही माया के चक्र में फँस जाता है और वृद्धावस्था आने तक वह पूर्णरूपेण इस मायाजाल में डूब जाता है।

5. **मोक्ष सम्बन्धी विचार** :- गुरु जाम्भोजी के विचार में मोक्ष का अर्थ आवागमन से छुटकारा पा लेना है। इसको उन्होंने स्वर्ग पाना, उद्धार होना तथा बैकुण्ठ में जाना कहा है। जो व्यक्ति काम-क्रोधादि को छोड़कर करणीय कृत्य करता है और जिसको गुरु सीख दे देता है, वही अपने मूल घर बैकुण्ठ में जाता है।

6. **गुरु महिमा में प्रतिष्ठा** :- गुरु जाम्भोजी ने गुरु महिमा पर बल दिया। उन्होंने अपना प्रथम सबद भी गुरु के संदर्भ में कहा था। इसमें गुरु के व्यापक स्वरूप का वर्णन किया है।

उसके अभाव में आत्मोपलब्धि आदि सभी कुछ असम्भव है।

7. **मूर्ति पूजा का खण्डन** :- उनका ब्रह्म निर्गुण, निराकार है। उनका मानना था कि पत्थर की उपासना से ईश्वर की प्राप्ति असम्भव है। अन्ततः मनुष्य जीवन को सुधारने के लिये मूर्ति नहीं, अपितु मन की उपासना जरूरी है, जो सात्विक एवं शुद्ध हो।

8. **बहुदेववाद का विरोध** :- गुरु जाम्भोजी बहुवेदवाद का विरोध करते हुए लोगों को चौसठ जोगनी और बावन वीरों की पूजा करना मना करते हैं। प्रभु के स्मरण पर उन्होंने बल दिया था। कलियुग में अनेक प्रकार के भूत-प्रेत एवं कलावन्तों से भी गुरु जाम्भोजी ने लोगों को सचेत किया था।

9. **बाह्याचारों में अनास्था एवं सत्कर्म में विश्वास** :- गुरु जाम्भोजी ने समाज में फैले अनेक प्रकार के पाखण्डों का विरोध किया था। गुरु ज्ञान के बिना तत्व प्राप्ति नहीं होती है। जोगी, जंगम, सींगी-धारी, दिगम्बर, संन्यासी, ब्राह्मण और पढ़े-लिखे पण्डित आदि के प्रयास भी गुरु के बिना व्यर्थ हैं।

10. **जाति बन्धन स्वीकार नहीं** :- मनुष्य अच्छे कुल में जन्म लेने से अथवा आयु से बड़ा नहीं होता है। बड़ा तो वह अच्छे कर्मों से होता है।

2.2.1.2.2 साधना पक्ष

प्रत्येक मत किन्हीं कार्यों-व्यवहारों (साधनाओं) को करने का आदेश देता है। ये ही उसके साधना पक्ष माने जाते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय में निम्नलिखित साधनाओं का विधान है:-

1. **ज्ञान योग** :- जीव का परम ध्येय ब्रह्म से मिलने का है। जब ब्रह्म का साक्षात्कार जीव कर सकेगा, उसे ही ज्ञान योग कहते हैं। जिस जीव को इस बात का ज्ञान हो जाता है, वह प्रभु के स्मरण से आवागमन के चक्र से छूट जाता है।

2. **भक्ति योग** :- गुरु जाम्भोजी की वाणी भक्ति-परक रचना है, जिसमें विष्णु के सामीप्य लाभ और आत्म तर्पण की भावना है। उनकी वाणी में विष्णु ही स्वयंभू और तत्व स्वरूप हे। उनकी भक्ति एक साधारण गृहस्थ की भक्ति है। इसको प्राप्त करने के लिए कहीं जंगल में जाकर घोर तपस्या करने की आवश्यकता नहीं है, न ही संन्यास धारण करने की

आवश्यकता है। मनुष्य अपने दैनिक कार्यक्रम में ही भक्ति कर सकता है। उनकी भक्ति के मुख्य अंग हैं - विष्णु नाम का स्मरण, दान की महिमा, जीव दया की प्रधानता, नम्रता, क्षमा और सहनशीलता।

3. **कर्मयोग** :- गुरु जाम्भोजी ने तत्कालीन समाज की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों एवं प्रभावों को निकटता से देखा था। जहां एक ओर राजा-महाराजाओं का ऐश्वर्यपूर्ण जीवन था, तो दूसरी ओर निरीह भोली-भाली जनता की दरिद्रता थी। सच्ची परख कर्म को पहचानना है, क्योंकि उसके अनुसार ही फल मिलता है। सदा सही ढंग से, उपयुक्त अवसर, स्थान, समय और स्थिति में किया गया कार्य ही सुफल देता है। किन्तु समझकर करने से ही किसी कार्य में सिद्धि मिलती है।, अन्धानुकरण से नहीं। कर्म सफलता का मूलमंत्र है। दुविधावृत्ति को त्यागकर, एकाग्रचित्त होकर मनुष्य को कर्म करना चाहिये। गीता के कर्मयोग की पुष्टि गुरु जाम्भोजी ने अपने एक सबद में की है। निष्काम भाव से सत्कार्य करते हुए कर्मक्षेत्र में मरना मुक्तिदायक है।

2.2.1.2.3 नैतिक पक्ष - किसी भी सम्प्रदाय में अपने कुछ नैतिक नियम भी होते हैं जिन्हें अपना नाम उस सम्प्रदाय के अनुयायी अपना नैतिक दायित्व मानते हैं। बिश्नोई सम्प्रदाय के 10 नैतिक नियम इस प्रकार हैं - 1. सत्य, 2. अहिंसा, 3. शील, 4. क्षमा, 5. दया, 6. संतोष, 7. दान, 8. परनिन्दा निषेध, 9. वाद-विवाद निषेध, 10. परहित चिन्तन

बिश्नोई सम्प्रदाय के प्रमुख क्रिया कलाप - बिश्नोई लोक-कथाओं में परमार्थ, सत्य, धर्म, बलिदान, नियमों के प्रति दृढ़ता और गुरु जाम्भोजी के चमत्कारों का वर्णन हुआ है। इस तरह विभिन्न पंथों की लोक-कथाओं में उन पंथों की परम्परा के अनुसार बिन्दुओं पर विचार हुआ है। यहाँ कुछ सामान्य बिन्दु उभरकर सामने आते हैं, जिनका उल्लेख सभी पंथों की लोक-कथाओं में हुआ है - 1. नाम स्मरण, 2. गुरु की महिमा, 3. रहस्यवादिता, 4. योग साधना, 5. सहजावस्था, चमत्कार तत्व।

2.2.2 बिश्नोई समाज -

बिश्नोई समाज का संगठन सन् 1485 में गुरु जांभोजी के बिश्नोई पंथ की स्थापना के साथ

ही हो आया था। इसमें सभी धर्मों, मतों, पंथों एवं जातियों के लोग शामिल हुए थे। इस पंथ में शामिल होने का साधारण तरीका था। जो व्यक्ति बिश्नोई पंथ की आचार-संहिता को मानता था और गुरु जांभोजी में आस्था रखता था, उसे पाहल पिलाकर बिश्नोई पंथ में शामिल कर लिया जाता था। गुरु जांभोजी के समय यह कार्य बहुत चला था। महात्मा वील्होजी के समय कुछ कठिनाइयां आई, लेकिन उन्होंने सब कठिनाइयों को दूर किया था। उन्होंने भी सभी जातियों के लोगों को पंथ में शामिल किया था। महात्मा वील्होजी के निर्वाण (सन् 1616) के पश्चात नये लोगों को पाहल पिलाकर पंथ में शामिल नहीं किया गया। इस कारण आज बिश्नोई समाज में परम्परागत लोग ही हैं। आज समाज का आधार वंश एवं जाति हो गया है।

बिश्नोई पंथ में सभी जातियों के लोग यथा अहीर, गायणा, जाट, थापन, नाई, बणियां, ब्राह्मण, बेहड़ भाट, मुसलमान, राजपूत, साधु, सुनार, सुथार एवं अन्य नीची जाति के लोग भी पाहल लेकर बिश्नोई हो गये थे। उनके मूल गोत्र तो वही रहे एवं जाति बिश्नोई हो गई। या यों कहें कि इसमें चारों वर्णों के लोग शामिल हुए थे। ये सामान्य बिश्नोई कहलाये। इनका अन्य समाजों अथवा अपने पूर्व वर्णों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है। इनमें आपस में किसी प्रकार का अब भेदभाव नहीं है। सभी बिश्नोई कहलाते हैं। जो गुरु जाम्भोजी में आस्था रखता है, विष्णु का स्मरण करता है एवं उनतीस धार्मिक नियमों का पालन करता है, वही सच्चे अर्थों में बिश्नोई है।

''वर्तमान में बिश्नोई समाज में सामान्य बिश्नोई ही सर्वमान्य बिश्नोई है। इसमें अन्य किसी प्रकार की जाति एवं उपजाति नहीं है। इनके गोत्र भी जो वर्तमान में हैं, वही है। पूर्व के गोत्रों अथवा पूर्व की उपजातियों से कोई रोटी-बेटी का सम्बन्ध नहीं है। आज बिश्नोई पंथ में जाट, राजपूत, बणियां, ब्राह्मण आदि जातियों का अलग से कोई महत्व अथवा अस्तित्व नहीं है। वे सब सामूहिक रूप से बिश्नोई कहलाते हैं एवं उनके अपने-अपने गोत्र हैं।''[29]

2.2.2.1 **सामाजिक जीवन** - प्रत्येक समदाय या समाज केवल नाम से ही भिन्न नहीं होता बल्कि उसकी जीवन शैली में भी कुछ न कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। यहाँ बिश्नोई

समाज के सामाजिक जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पक्षों की चर्चा की जा रही है।

खान-पान - बिश्नोई लोगों का खान-पान शुद्ध एवं शाकाहारी है। वे घर में गाय-भैंस रखते हैं। गाँव के लोग बाजारी की रोटी खाते हैं। शहर एवं बाहर के बिश्नोई गेहूँ की रोटी पसन्द करते हैं। सांगरी, बड़ी, दाल, प्याज एवं आलू की सब्जी अधिक खाते हैं। हलवा, खीर, चूरी आदि खाना भी उनके लिये आम बात है। वे कढ़ी विशेष पसन्द करते हैं। मेहमानों का बड़ा स्वागत करते हैं। उनके लिये विशेष खाना बनाते हैं तथा उनके साथ सब मिलकर खाते हैं। शुद्ध एवं अच्छे खाने की वजह से बिश्नोइयों का स्वास्थ्य अच्छा है। राजस्थान के बिश्नोई राबड़ी अधिक पसन्द करते हैं।

रहन-सहन - बिश्नोई अधिकतर गाँवों में रहते हैं। शुद्ध सात्विक जीवन व्यतीत करते हैं। मरुस्थल में झोंपड़ों में रहते हैं। पशुओं का अलग बाड़ा बनाते हैं। जोधपुर, फलौदी, नोखा आदि के गाँवों के बिश्नोई खेतों में ढाणियों में रहते हैं।

वेश भूषा - सामान्यत: बिश्नोई पुरुष सफेद कुर्ता, धोती और सफेद पगड़ी बांधते हैं। फलौदी और मारवाड़ क्षेत्र की बिश्नोई स्त्रियों के कपड़े अन्य क्षेत्र की स्त्रियों से कुछ भिन्न है। यहाँ की स्त्रियाँ कांचली, बुगचा और साड़ा पहनती हैं। अन्य क्षेत्र की स्त्रियाँ लहंगा, कमीज व ओढ़नी पहनती हैं।

अभिवादन प्रणाली - जब बिश्नोई एक दूसरे को मिलते हैं तो निवण-प्रणाम करते हैं। सामने वाला तब कहता है - विष्णुजी नै, गुरु जाम्भोजी नै। इसका अभिप्राय यह है कि तुम मुझे क्या नमस्कार करते हो, नमस्कार तो गुरु जांभोजी महाराज को करो, जो स्वयं विष्णु हैं।

शिक्षा - शिक्षा के क्षेत्र में बिश्नोई बहुत पिछड़ा रहा है। यह एक कृषक समाज था। लोग खेती-बाड़ी एवं पशु-पालन पर विशेष ध्यान देते थे। वर्तमान में, इस दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आया है। आज सभी क्षेत्रों की नौकरियों में बिश्नोई लगे हुए हैं। राजनीति, पुलिस, इंजीनियरिंग, डॉक्टरी, न्याय, फिल्म, साहित्य आदि के कार्यक्षेत्रों में बिश्नोइयों ने अपना नाम कमाया है। लड़कियों की शिक्षा की ओर भी अब विशेष ध्यान दिया जा रहा है।

जागरण अथवा जम्मा - जम्मा अथवा जागरण का उद्देश्य सत्संग करना एवं गुरु

जांभोजी के जीवन चरित्र से शिक्षा लेना है। बिश्नोई जम्मे का एक पवित्र धार्मिक कार्य समझते हैं। सभी बिश्नोई वर्ष में एक बार अपने घर में अवश्य जागरण लगवाते हैं। अमावस्या अथवा मेलों पर भी बिश्नोई मंदिरों में जागरण लगता है। सर्वप्रथम एक घी का दीपक जलाया जाता है। फिर गुरु जांभोजी की पांच आरतियां गाई जाती हैं। इसके बाद गुरु जांभोजी के जम्मे की पांच साखियां गाई जाती हैं। उनका भावार्थ एवं उनसे संबंधित अन्त: कथाएं बताई जाती हैं। इसके बाद लय रूप में गुरु जांभोजी से संबंधित कथा-काव्य गाये जाते हैं। इनमें गुरु जांभोजी के जीवन चरित्र का वर्णन होता है। सुबह हवन किया जाता है और गुरु जांभोजी के 120 शब्दों का सस्वर पाठ किया जाता है। आधी रात्रि को कृष्ण भगवान (विष्णु) की आरती गाई जाती है। अन्त में कवि साहबरामजी राहड़ एवं राजूरामजी गायणा की आरतियाँ गाई जाती हैं। कलश पूजा मन्त्र और पाहल मंत्र पढ़ा जाता है। सब लोग पाहल लेते हैं और भोजन करते हैं। अन्त में, वील्होजी की साखी 'ऊमावड़ो' गाई जाती है।

व्रत, त्यौहार - बिश्नोइयों के लिये अमावस्या का व्रत रखना एक धार्मिक नियम है। अमावस्या को लोग बिश्नोई मन्दिर में जाते हैं। सोमवती अमावस्या का विशेष महत्त्व है। निर्जला ग्यारस का व्रत रखने की भी परम्परा रही है। स्त्रियाँ विशेषकर सेडल, गवर, सावन-तीज मनाती हैं। अक्षय तृतीया का त्यौहार बिश्नोई नव वष्र के स्वागत स्वरूप मनाते हैं। इस दिन में सुकाल-दुकाल का शगुन विचारते हैं। होली और दीपावली बिश्नोइयों के दो बड़े त्यौहार हैं। होली को बिश्नोई प्रहलाद के जीवित बचने की खुशी में दूसरे दिन मनाते हैं।

2.2.2.2 आर्थिक जीवन

बिश्नोई समाज में हाथ से काम करने को विशेष महत्त्व दिया जाता है। 'हाथे करो टबाई और करो रसोई हाथ सूँ' ये दो संदेश गुरु जाम्भोजी ने दिये थे। इनको मानते हुए लोग काम करना पसन्द करते हैं। इस कारण कहीं भी बिश्नोई को भीख माँगते हुए नहीं देखा गया है। आर्थिक जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलू इस प्रकार हैं

कृषि एवं पशुपालन - बिश्नोई समाज ग्रामीण लोगों का है। उनका मुख्य पेशा खेती का है और वे पशु रखते हैं। पंथ की स्थापना के समय भी इसमें अधिकतर खेतीहर लोग ही

सम्मिलित हुए थे। लोहट जी स्वयं एक सम्पन्न किसान थे। गुरु जांभोजी पशुओं से विशेष स्नेह रखते थे। बिश्नोई पंथ की आचार-संहिता में भी कई नियम पशुओं को संरक्षण देने के लिये बनाये गये थे। बिश्नोइयों के पशु विशेष रूप से अच्छे एवं मजबूत होते हैं। उनकी गायें व भैंसे अधिक दूध देने वाली होती हैं। उनके बैल एवं ऊंट अधिक खेती कार्य करने वाले होते हैं और विशेष प्रसिद्ध होते हैं। सम्पन्न बिश्नोई अच्छी घोड़ी-घोड़ा भी रखते हैं। बिश्नोई भेड-बकरियाँ नहीं रखते हैं। खेती वर्षा पर आधारित है। जहाँ नहर का पानी लगता है, वहाँ खेती अच्छी होती है। राजस्थान में कुंओं का पानी गहरा है। जहाँ पानी है, वहाँ दो साखिया फसल होती है। गर्मियों में बाजरी, मूंग, मोठ, तिल, ग्वार कपास आदि की खेती होती है। सर्दियों में चना, सरसों, तारामिरा, गेहूँ आदि की खेती करते हैं। पंजाब, हरियाणा के बिश्नोई परिश्रमी एवं अच्छी खेती करने वाले किसान हैं।

सामूहिक खेती की पद्धति - बिश्नोई समाज में कृषि कार्य को सामूहिक रूप से करने की यह एक अनोखी पद्धति है। किसी बिश्नोई के मानो 100 बीघों में चनों की फसल पक्की हुई खड़ी है। उसे काटना है। उसको मजदूर नहीं मिलते हैं। उसके स्वयं के आदमी कम हैं। वर्षा, ओले या आंधी आदि आने से वह पक्की हुई फसल नष्ट हो सकती है। अत: वह अपने गाँव के सभी बिश्नोइयों को इस कार्य को करने का आमन्त्रण देता है। सभी घरों के व्यक्ति इस कार्य में उसकी मदद करते हैं। वह व्यक्ति उन सबको सामूहिक भोजन खिलाता है। इसे लाऽश करना कहते हैं।

वर्तमान में बिश्नोई कृषि कार्य की ओर विशेष ध्यान दे रहे हैं। जमीन से उन्हें विशेष प्रेम है। वह किसी भी हालत में अपनी जमीन नहीं बेचता है। गंगानगर (राजस्थान) हरियाणा-पंजाब में, जहाँ भूमि में नहर का पानी लगता है, वे अच्छी फसलें उठाते हैं। सम्पन्न किसानों द्वारा ट्रैक्टर का प्रयोग एक आम बात है। वे कृषि में नये यन्त्र, बीज एवं खाद का प्रयोग करते हैं। अपने अच्छे पशुओं की वजह से उनका झुकाव डेयरी उद्योग की ओर हुआ है। इसके अतिरिक्त बिश्नोई अन्य उद्योग-धन्धों में भी जाने लगे हैं। उन्होंने ट्रांसपोर्ट उद्योग में विशेष सफलताएँ अर्जित की हैं।

2.2.2.3 **सांस्कृतिक जीवन** - कोई भी समाज किन्हीं जीवन मूल्यों में भी भिन्न होता हे। ये मूल्य ही उसका सांस्कृतिक जीवन होते हैं -

संस्कार एवं रीति रिवाज - बिश्नोई समाज के धार्मिक संस्कार एवं रीति-रिवाज बहुत कुछ अन्य हिन्दू समाजों की तरह ही हैं। लेकिन इन संस्कारों एवं रीति-रिवाजों में अन्य समाजों के रीति-रिवाजों एवं संस्कारों से अन्तर भी है। इस समाज के रीति-रिवाजों एवं संस्कारों में यह जड़ता एव आडम्बर नहीं, जो अन्य समाजों में हमें देखने को मिलता है। इस समाज के संस्कार एवं रीति-रिवाज गुरु जाम्भोजी की शिक्षाओं एवं उनकी आचार-संहिता के अनुकूल ही धीरे-धीरे निर्मित हुए हैं। बिश्नोइयों के सभी संस्कारों में हवन, कलश स्थापना एवं पाहल होता है बिश्नोइयों के तीन मुख्य संस्कार हैं - जन्म, विवाह एवं मृत्यु।

बिश्नोई समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन से हमारे सामने एक ऐसे समाज का वास्तविक रूप सामने आता है, जो कथनी की बजाय करनी में विश्वास करता है। जो क्रिया को ही सार मानता है ओर जीने की विधि जानता है। जिस प्रकार बिना दानों के भूसी और बिना रस के गन्ने का छिलका होता है, उसी प्रकार बिना कोई कार्य किए जीवकोपार्जन भी निरर्थक है। निठल्लापन आदमी और उसके परिवार दोनों के लिए त्याज्य है - किन्तु पेट पालन हेतु अन्याय, बेईमानी, चोरी, हेराफेरी से भी धन नहीं कमाना चाहिए। बिश्नोई समाज के लोगों ने गुरु जाम्भोजी के उपदेशों एवं उनके धार्मिक नियमों को अपने जीवन में संस्कार और कार्य विधि के रूप में शामिल किया है। यही सब हमें बिश्नोई कथाओं में भी देखने को मिलता है।

1. **कर्मकाण्ड में विश्वास नहीं** :- बिश्नोई लोक कथाओं में अनेक जगह पाखण्डों को नकारा गया है। जब गुरु जाम्भोजी को बुलवाने के लिए पुरोहित अनेक कर्मकाण्ड कर रहा था तब उन्होंने उसे सीधा ही फटकारा था। आज भी बिश्नोई श्राद्ध नहीं करते और मृत्यु पर मुण्डन नहीं करवाते हैं।

2. **मूर्तिपूजा नहीं** :- भारत देश में मूर्ति पूजा विशेष प्रचलित है। मूर्ति से सम्बन्धित अनेक कर्मकाण्ड हैं जैसे- मूर्ति स्थापित करना, उसको नहलाना, कपड़े पहनाना, भोग लगाना

आदि। लेकिन बिश्नोई मूर्ति पूजा नहीं करते और न ही अपने मंदिरों में मूर्ति रखते हैं। मंदिर का निर्माण भी हवन, आरती एवं सत्संग के लिए करते हैं।

3. **ज्योतिष एवं मुहूर्त** :- बिश्नोई किसी भी शुभ कार्य करने के लिए अधिक मुहूर्त देखने की आवश्यकता नहीं समझते हैं और न वे किसी ज्योतिषि से पूछते हैं। बिश्नोई के लिए ऐसे मुर्हूत की आवश्यकता नहीं। शादी जैसे महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए भी उन्हें किसी विशेष मुहूर्त की आवश्यकता नहीं है। कथा अहदावणी, कथा उषा पुराण, कृष्णजी रो ब्याहलो में भी ज्योतिष एवं मुहूर्त का वर्णन है, लेकिन बिश्नोई समाज में इन बातों को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। परन्तु बिश्नोई ज्योतिष के अनुसार घड़ी पल में अमावस्या रखते हैं।

4. **धर्मस्थलों में नारी नृत्य नहीं** :- बिश्नोई समाज में स्त्रियों को समानता का दर्जा दिया गया है। उन्हें भी 29 धार्मिक नियम मानने आवश्यक हैं। गुरु जाम्भोजी ने तो नारी जाति की रक्षा के लिए अपने धार्मिक नियमों में स्त्रियों के लिए विशेष रूप से दो नियम बनाये थे। बिश्नोइयों के तीर्थ-स्थलों पर भी किसी प्रकार का नारी नृत्य नहीं होता है।

सांस्कारिक देन

1. **एक माह के शिशु को गुरु मंत्र एवं 10-12 वर्ष के बच्चे को गुरु दीक्षा** :- बिश्नोइयों में किसी प्रकार का जनेऊ संस्कार नहीं होता। बच्चे के जन्म के बाद घर में 30 दिन का सूतक रखा जाता है। 31वें दिन हवन और पाहल करके सूतक निकाला जाता है और इसके साथ ही उसे बालक मंत्र से पाहल दिया जाता है। 10-12 वर्ष के बच्चे को सुगरा किया जाता है और औपचारिक रूप से उसे किसी बिश्नोई साधु का शिष्य बनाया जाता है। अन्य किसी प्रकार का कर्म काण्ड नहीं होता है। गुरु मंत्र केवल बिश्नोई साधु ही देते हैं अन्य किसी सम्प्रदाय का साधु अथवा गायणाचार्य नहीं दे सकते हैं।

2. **पाहल प्रथा** :- बिश्नोइयों के मुख्य तीन ही संस्कार हैं - जन्म, विवाह और मृत्यु। इन तीनों में ही पाहल बनाया जाता है। पाहल एक अभिमन्त्रित जल होता है। पहले हवन किया जाता है और इसके साथ एक स्वच्छ पानी का कलश रखा जाता है। हवन करते समय गुरु जाम्भोजी की वाणी का पाठ किया जाता है। फिर कलश मंत्र, पाहल मंत्र पढ़कर पाहल बनाया

जाता है। होली-दीपावली पर भी गाँव के मन्दिर में पाहल बनता है और सभी बिश्नोई उसे लेना एक शुभ कार्य समझते हैं। जागरण एवं मेलों के अवसर पर भी पाहल सामूहिक रूप से बिश्नोई लेते हैं।

3. **मृतक को भू दाग** :- बिश्नोई मृतक को जमीन में गाड़ते हैं। वे शव को जताना अच्छा नहीं समझते। इसके लिए स्वयं गुरु जाम्भोजी ने मना किया था। बिश्नोई हवन एवं जोत करते हैं और अग्नि में नहीं जलाते। मरने के बाद मृत शरीर मिट्टी के समान है और उसे मिट्टी में ही मिलना है। वेदों में चार दाग बताये हैं - वायु दाग, अग्नि दाग, जल दाग, भूमि दाग। बिश्नोई भूमि दाग करते हैं।

4. **मृतक-सूतक तीन दिन ही** :- बिश्नोइयों में किसी की मृत्यु के बाद तीन दिन का ही शोक मनाया जाता है। बिश्नोइयों में तीसरे दिन सूतक निकाल कर, यदि वृद्ध हो तो मृत्यु भोज करते हैं। तीन दिनों बाद यदि अमावस्या अथवा ग्यारस हो तो पाँच दिन का सूतक मनाते हैं। यह शायद इसलिये ही है कि गुरु जाम्भोजी महाराज के शरीर को तीन दिन बाद मुकाम में समाधिस्थ किया गया था। उनका निर्वाण मिंगसर वदि नोमी को हुआ था और भू-दाग मिंगसर वदि ग्यारस को किया गया था।

5. **मृतक की स्मृति में प्याऊ बनाने का नियम** :- बिश्नोई मृतक की समाधि पर कोई मंदिर, चौकी या चबूतरा नहीं बनाते। वे उसकी स्मृति में प्याऊ बनवाते हैं ताकि वहाँ प्यासे लोग गर्मियों में पानी पी सकें। आजकल स्मृति स्वरूप लोग विद्यालयों अथवा धर्मशालाओं में कमरा भी बनाते हैं।

6. **होली के त्यौहार में सूतक** :- बिश्नोइयों के लिए होली शोक का त्यौहार है। होली वाले दिन वे सूतक मनाते हैं। वे ऐसा इसलिए मानते हैं कि प्रहलाद को होलिका अग्नि में लेकर इसी दिन बैठी थी। उस दिन (पूर्णिमा) वे लोग जमीन पर सोते हैं। साँझ को दलिया-धान आदि खाते हैं। कुछ लोग भूखे भी सोते हैं। सुबह मंदिर में हवन, कलश स्थापना एवं पाहल होता है। सुबह उन्हें प्रहलाद के जीवित बचने की खबर लगती है। इसलिए वे खुशी मनाते हैं और घर में अच्छा भोजन बनाते हैं।

2.2.2.4 **धार्मिक जीवन** - बिश्नोई सम्प्रदाय एक आचार-विचार मूलक सम्प्रदाय है जिसमें व्यक्ति के दैनिक व्यवहार को सात्विक और मानवीय बनाने का निर्देश है। ऐसे आचरणों में कुछ विशेष निम्नलिखित आचरण हैं -

1. **सुबह हवन एवं सायं आरती** :- बिश्नोई समाज में प्रत्येक बिश्नोई सुबह जल्दी उठकर स्नान करता है और फिर हवन करता है। इसके साथ ही गुरु जाम्भोजी के सबदों का सस्वर उच्चारण करता है। सायं काल ज्योति प्रकाशित की जाती है और सस्वर आरती की जाती है। यह कार्यवाई उनके दैनिक कार्यक्रम में आवश्यक रूप से शामिल हो चुकी है।

2. **अमावस्या का व्रत** :- अमावस्या का व्रत रखना एक धार्मिक नियम भी है। व्रत रखने से शारीरिक तन्त्र को कुछ आराम तो मिलता ही है साथ ही शरीर की एक प्रकार से सफाई भी हो जाती है। मन की शुद्धि के लिए भी यह आवश्यक है।

3. **रात्रि जागरण करना** :- रात्रि जागरण लगाना भी एक धार्मिक अनुष्ठान है। इसमें किसी प्रकार का आडम्बर नहीं। सायं को घी की एक ज्योति प्रकाशित की जाती है। गुरु जाम्भोजी ने कहा था कि मैं ज्योति में विराजमान हूँ। ज्यादातर बिश्नोई मंदिरों में अटल जोत जलती है। आरतियाँ, साखियाँ और गुरु जाम्भोजी से सम्बन्धित कथा-काव्यों को रात्रि जागरण में गाया जाता है। इन साखियों एवं काव्यों का भावार्थ भी समझाया जाता है। सुबह हवन, कलश स्थापना एवं पाहल होता है। वर्ष में कम से कम एक बार जागरण लगाना प्रत्येक बिश्नोई अपना नैतिक एवं धार्मिक उत्तरदायित्व समझता है।

4. **पर्यावरणीय चेतना** - बिश्नोई समाज ने पर्यावरण चेतना का नया पर्याय विश्व के सामने रखा है। सर्वप्रथम इस पर गुरु जाम्भोजी ने ही विचार किया था और अपने धार्मिक नियमों में कुछ नियम पर्यावरण सम्बन्धी भी शामिल किये थे। कालान्तर में बिश्नोइयों ने इन नियमों को बड़ी गम्भीरता से लिया ओर इन नियमों की पालनार्थ अनेक कष्ट उठाये। पर्यावरण संतुलन बना रहे इसके लिए उन्होंने पेड़ों को काटने से लोगों को रोका। इनको बचाने के लिए उन्होंने अपने प्राण न्यौछावर किये।

5. **तीर्थों का महत्त्व** - भारतीय लोक जीवन में तीर्थों ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक

सहयोग का निर्माण किया है। इन तीर्थों से सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता तथा पर्यावरणीय शुद्धता स्थापित हुई है। ये भारतीयता के प्रतीक हैं। धामों एवं साथरियों पर वर्ष में मेले लगते हं। वहाँ देश के विभिन्न भागों से लोग आते हैं। इससे उनमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित होती है। यहाँ पर सामाजिक कुरीतियों पर विचार होता है। कोई बुरा काम करता है तो उस पर जुर्माना लगाया जाता है। यदि अपराध अधिक संगीन हो तो ''हेला पद्धति'' से उसे समाज से बहिष्कृत भी किया जाता है। यहाँ पर विभिन्न स्थानों से आये हुए लोग अपने बच्चों का रिश्ता भी तय करते हैं।

बिश्नोइयों के तीर्थ स्थान एक प्रकार से उस क्षेत्र विशेष के लिये एक पीठ का काम करते हैं। इन स्थानों पर अनेक योग्य संत हुए हैं, जिन्होंने बिश्नोई-साहित्य की रचना की थी। इसलिये आज भी लोग वील्होजी, सुरजनजी, केसोदासजी, परमानन्दजी, साहबरामजी, गंगारामजी आदि का नाम श्रद्धावश लेते हैं। इन स्थानों पर स्थानीय समस्याओं एवं धार्मिक कार्यों पर बिश्नोई पंचायत द्वारा विचार किया जाता है। जो व्यक्ति धार्मिक आचार के विरुद्ध कार्य करता है, तो यहाँ के महन्त उसे दण्डित अथवा बहिष्कृत कर सकते हैं। इस प्रकार भय से भी लोग धर्म के विरुद्ध आचरण नहीं करते है। इन साथरियों का अपना इतिहास है। इससे उसे समय के व्यक्ति के कालक्रम एवं स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। मंदिरों एवं साथिरियों पर लगे शिलालेखों से उस समय की सही स्थिति आंकी जा सकती है। इन तीर्थों को सुरक्षित रखने के लिये साहसिक पुरुषों के बलिदानों की गाथा हमें मालूम होती है। साथरी की सम्पन्नता एवं मंदिर की प्राचीनता का पता चलता है।

आज तीर्थों के क्षेत्र में गुरु जाम्भोजी की ओरण भूमि को सुरक्षित रखने में भी अनेक कठिनाइयां आ रही हैं। अन्य जातियों के लोग चोरी-छिपे वहाँ से वृक्ष काट लेते हैं और वन्य प्राणियों को मार लेते हैं। कुछ लोगों ने इस भूमि को जोत भी लिया है। यह भी समाज के लिये एक समस्या है। आज इन तीर्थों एवं साथरियों की स्थाई एवं उत्तम व्यवस्था करने की आवश्यकता है। कुछ साथरियाँ टूटी-फूटी हैं। वहाँ पर व्यवस्था के नाम पर एक आदमी भी नहीं रहता है। केवल अवसर विशेष में ही लोग जाते हैं, यह समस्या विचारणीय है।

बिश्नोई लोक-तीर्थों की प्राकृतिक छटा, भव्य मेले, मेलों पर महायज्ञ, मंदिरों में अटल जोत तीर्थों की ओरण भूमि, यहाँ संरक्षित हरे वृक्ष और इसके प्रांगण में विचरते वन्य प्राणी सबका मन मोह लेते हैं। ये सभी विशेषताएँ बिश्नोई लोक तीर्थों में सामूहिक रूप से पाई जाती हैं। बिश्नोइयों की इन्हीं विशेषताओं का उल्लेख बिश्नोई लोक-कथाओं के पौराणिक ऐतिहासिक एवं लौकिक पक्ष में हुआ है।

2.2.3 **बिश्नोई साहित्य** - हिन्दी साहित्य के इतिहास का पूर्ण मध्यकाल अनेकानेक कारणों से महत्त्वपूर्ण माना जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जहाँ इस्लाम जैसे सुसंगठित सम्प्रदाय के आगमन को इस काल की प्रमुख घटना मानते हैं, वहीं विजयेन्द्र स्नातक भक्ति आन्दोलन को इस काल की सर्वप्रमुख घटना मानते हैं। इससे एक बात तो स्पष्ट हो जाती है कि यह युग घटनापूर्ण था और इन घटनाओं का पारस्परिक सम्बन्ध भी रहा था। मुस्लिमों का इस देश में आगमन अपने पूर्वाक्रमणकारियों से भिन्न था। उनके एक हाथ में तलवार थी जिसके बल पर वे दूसरे हाथ में पकड़ी इस्लाम धर्मध्वजा को यहाँ फहराना चाहते थे।

उनकी इस प्रकार की नीति और देशी राजाओं की उदासीनता एवं विलासिता ने भारतीय जनता के कष्टों को और अधिक बढ़ा दिया था। इस कार्य में रही-सही कसर हिन्दू धर्माचार्यों की संकीर्णता एवं स्वार्थलोलुपता ने पूर्ण कर दी थी। धर्मभीरू भारतीय जनता की इस असहाय अवस्था के समय 'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' की उक्ति को चरितार्थ करते हुए अनेक संत-महापुरुष अवतरित हुए, जो अपने कार्य-चरित्र की दृष्टि से देवदूतों के समान थे। इन महात्माओं के अनुयायियों की संख्या शीघ्र ही बढ़कर एक पंथ या सम्प्रदाय में परिवर्तित होने लगी थी। बहुत से दूरदर्शी महात्माओं ने समान विचारधारा वाले लोगों को संगठित रखने के लिए विधिवत रूप से भी पंथ की स्थापना की थी। इस प्रकार मध्यकालीन उत्तरी भारत में इन कल्याणकारी पथ-सम्प्रदायों की बाढ़-सी आ गई थी।

मध्य युग के धार्मिक सम्प्रदायों में जाम्भाणी पंथ व परम्परा अपना विशेष महत्त्व रखती है। जिसका प्रवर्तन गुरु जम्भेश्वर जी महाराज ने किया था। "गुरु महाराज के बाद उनकी वाणी व उपदेश का अनुसरण व प्रचार-प्रसार करने वाले बिश्नोई समाज के अनेकानेक

संत हुए हैं जिन्होंने गुरु महाराज के पद्चिह्नों पर चलकर तो दिखाया ही, साथ ही जाम्भाणी परम्परा को और विस्तार दिया है। यह शृंखला 500 वर्षों से निर्बाध रूप से बह रही है। गुरु जांभोजी के पश्चात इस परम्परा में होने वाले मुख्य संतों में भक्त तेजो जी, चारण डेल्ह जी, पदम भगत, सुरजनजी, एकजी, लालचंदजी, आसनोजी, उदोजी नैण, अल्लूजी, राव लूणकरणजी, लक्ष्मणजी गोदारा, वील्होजी, केसोजी गोदारा, सुरजनदास जी पुनियाँ, गोकलजी, हरजी वणियाल, परमानन्दजी वणियाल, गोविंदरामजी गोदारा व साहबरामज राहड़ आदि हैं।'[30]

2.2.3.1 बिश्नोई सम्प्रदाय : काव्य और कवि -

बिश्नोई समप्रदाय ने विश्व को केवल एक संतुलित एवं प्रगतिशील जीवन शैली ही नहीं प्रदान की, बल्कि एक उच्चकोटि के साहित्य की रचना करके भी इस क्षेत्र में अपना महनीय योगदान दिया है। बिश्नोई सम्प्रदाय का अधिकांश साहित्य साधु-संतों द्वारा रचित है और उसके सुरक्षित रहने के इतिहास में उपर्युक्त साथरियों एवं पीठों का पूरा-पूरा योगदान रहा है। लगता है इन संतों ने यह कार्य अपना कर्त्तव्य समझकर किया था। सम्पूर्ण बिश्नोई साहित्य को सामूहिक रूप से 'जाम्भाणी साहित्य' कहा जाता है। यह साहित्य न केवल परिमाण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है बल्कि विषयवस्तु एवं काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। इस साहित्य में पूरे विश्व को दिशा देने की शक्ति अंतनिर्हित है। इस महान साहित्य की हिन्दी साहित्य के इतिहास में जैसी घोर उपेक्षा हुई है, ऐसा कम ही होता है। इसके पीछे एक कारण इसका प्रकाशन में न आना भी रहा है। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने इस सम्प्रदाय के सम्पूर्ण साहित्य पर डी. लिट्. का शोध प्रबन्ध 'जाम्भो जी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य' लिखा है। आगे दी गई कवियों एवं उनकी रचनाओं की सूची उक्त शोध प्रबन्ध के अनुसार है -

1. तेजो जी चारण (1480-1575) - छन्द, गीत, साखी, हरजस, मरसिये
2. समसदीन - (1490-1550) - साखी
3. डेल्ह जी (1490-1550) - बुध परगास, कथा अहमंनी
4. आंछरे - (1500-1550) - साखी
5. पद्म भगत - (1500-1560) - क्रिसण जी री व्यांवलो

6. कील्ह जी चारण - (1500-1560) - बारामासी, कवित

7. सुरजन जी (हजूरी) - 1500-1570 - साखी

8. सिवदास - (1500-1570) - साखी

9. एकजी - (1500-1570) - साखी

10. अमियांदास - (1500-1570) - साखी

11. जोधो रायक - (1500-1570) - साखी

12. केसो जी देहडू - (1500-1580) - साखी

13. लालचंद नाई - (1500-1580) - साखी

14. कान्हो जी बारहट - (1500-1580) - बावनी, फुटकर, छन्इ, गीत, कवित, हरजस

15. आसनो जी - (1500-1600) - झूमखो

16. कोल्ह जी चारण - (16वीं शताब्दी) - छप्पय (कवित्त)

17. उदो जी नैण - (1505-1593) - साखी, हरजस, आरती, कवित, गर्भ चिंतावणी

18. अल्लू जी कविया - (1520-1620) - कवित्त, गीत, मरसिये

19. दीन महमंद - (1525-1600) - हरजस

20. रायचंद सुथार - (1525-1610) - साखियाँ

21. कुलचंद राय अग्रवाल - (1505-1593) - साखियाँ

22. राव लूणकरण - (1526-1583) - कवित्त

23. रेड़ो जी - (1550-1600) - साखी

24. वाजिन्द जी - (1530-1600) - साखी

25. लखमण जी गोदारा - (1530-1593) - साखी

26. आलम जी - (1530-1610) - साखी, हरजस

27. रैदास धतरवाल - (1530-1600) - साखी, हरजस

28. भींवराज - (1530-1600) - साखी

29. दीन सुदरदी - (1535-1600) - साखियाँ

30. मेहो जी गोदारा - (1540-1601) - रामायण

31. रहमत जी - (1550-1625) - हरजस

32. गुणदास - (1560-1640) - साखी

33. लाखू - (1560-1650) - साखी

34. वील्हो जी - (1589-1673) - कथा धड़ाबंध, कथा औतारपात, कथा गुगलिये की, कथा कूल्है जी की, कथा दूणपुर की, कथा जैसलमेर की, कथा झोरड़ां की, कवित्त परसंग का, कथा ग्यानंचरी, सच अखरी विगतावली, साखियाँ, हरजस, विसन छत्तीसी, छपइया, दूहा मंझ अखरा-अवतार का, छुटक साखी।

35. दसुंधीदास - (17वीं शताब्दी) - सवैया

36. आनन्द - (17वीं शताब्दी) - साखी, नीसाणी

37. नागिन - (17वीं शताब्दी) - साखी, नीसाणी

38. लालो जी - (17वीं शताब्दी) - साखी 'आंबेलो'

39. गोपाल - (17वीं शताब्दी) - फुटकर छन्द

40. हरियो - (17वीं शताब्दी) - गोपीचंद की साखी

41. दुरगदास - (1600-1680) - हरजस

42. किशोर - (1630-1730) - सवैया

43. कालू - (1630-1730) - साखियाँ

44. केसो दास जी गोदारा (1630-1730)

45. सुरजन जी पूनिया (1640-1748) - साखियाँ, गीत, हरजस, अंगचेतन, दस अवतार दूहा, असमेघ जिग का दूहा, छंद, कवित्त, कवित्त बावनी, सवइए, कथा, चेतन, कथा चिंतावणी, कथ धरमचरी, कथ हरिगुण, कथा औतार की, कथा परसिघ, ग्यान महात्तम, गयान तिलक, कथा गजमोख, कथा उा पुराण, भोगल पुराण, रामरासौ।

46. मिठु जी - (1650-1750) - हरजस, सवैए

47. माखन जी - (1650-1750) - हरजस 'सोहलो'

48. रामू खोड - (1675/76-1700) - साखी

49. रूपो वणियाल - (1680-1750) - साखी

50. दामोजी - (1680-1768) - कवित्त, साखी

51. देवो जी - (1700-1780) - हरजस

52. हरिनंद - (1700-1780) - हरजस, फुटकर छंद

53. गोकल जी - (1700-1790) - इन्दव छन्द, अवतार की विगत, परची, स्तुति होम की, साखियाँ

54. रासानंद - (1700-1800) - हरजस

55. मुकन जी - (1710-1790) - फुटकर छन्द, हरजस

56. सेवादास - (1720-1790) - इन्दव छन्द, चौजूगी, पिसण सिंघार

57. चतरदास - (1700-1800) - भजन (गोपीचंद विषयक)

58. सुदामका - (1700-1800) - बारहखड़ी

59. हीरानंद - (1750-1800) - हिंडोलणो

60. हरजी बणियाल - (1745-1835) - साखियाँ, फुटकर छन्द

61. परमानन्द जी वणियाल - (1750-1845) - प्रसंग दोहे, हरजस, साखियाँ, विसन, असतोत्र, फुटकर छन्द, साका (गद्य) छमछरी (संवत्सरी)

62. गोविन्द राम जी बागड़िया - (1750-1850) - जन्माष्टक (संस्कृत)

63. रामलला - (1775-1850) - रुक्मिणी मंगल

64. हरचंद जी ढुकिया - (1775-1860) - लघु हरि प्रहलाद चिरत, फुटकर कवित्त

65. गंगाराम - (1783-1883) - हरजस

66. सूरत राम - (1787-1887) - हरजस

67. मयाराम दास - (1800-1870) - अमावस्या कथा, फुटकर छंद

68. खैरातीराम मेरठी - (1800-1860) - बारहमासा

69. विष्णुदास - (1800-1885) - आरती, हरजस, जन्माष्टक की विष्णु विलास टीका।

70. हरिकिसन दास - (1800-1899) - पत्री (गद्य-पद्य)

71. पोहकर दास - (1800-1850) - नुगरी, सुगरी को झगड़ो, भजन

72. ऊदो जी अडींग - (1818-1933) - प्रहलाद चरित, विष्णु चरित, कक्का छतीसी, लूर, फुटकर छंद

73. मोतीराम - (1850-1925) - आरतियाँ

74. लीलकंठ वेचू - (1860-1920) - फुटकर छंद

75. गोविन्द राम जी गोदारा - (1860-1950) - वील्हो जी की स्तुति, साखियाँ, जम्भ महिमा वर्णन, विसनु सरूप (गद्य)

76. खेमदास - (1865-1951) - कवित्त (छप्पय)

77. साधु मुरलीदास (19वीं शताब्दी) - फुटकर छंद

78. पीताम्बर दास - (19वीं शताब्दी) - आरती, हरजस, जम्भाष्टोत्तर शतनाम

79. परसराम जी - (19वीं शताब्दी) -दोहे

80. केसौदास जी - (19वीं शताब्दी) - मंगलाष्टक

81. साहब राम जी राहड़ - (1871-1948) - सतलोक पहुंचने का परवाना, सार शब्द गुंजार, सार बत्तीसी, अमर चाजीसी महामाया की स्तुति, फुटकर रचनाएँ (आरती, साखियाँ, भजन, हरजस) जम्भसार

82. बिहारी दास - (1870-1950) - फुटकर छंद, जम्भसरोवर स्तुति, जम्भाष्टक

83. शीतल - (1900-1975) - भजन और लावनी

84. ईश्वरानन्दजी गिरी - (1891-1955)

85. स्वामी ब्रह्मानन्द जी - (1910-1985) - श्री जम्भदेव चरित्र भानु, साखी संग्रह प्रकाश, मृत्तक संस्कार निर्णय, श्री वील्हो जी का जीवन चरित्र तथा वील्हो जी का संक्षिप्त वृतांत, बिश्नोई धर्म विवेक, विद्या और अविद्या पर व्याख्यान, गोत्राचार, शिक्षा पर भाषण, आरती, भजन

86. हिम्मतराय - (1900-1980) - फुटकर छंद

87. किशोरीलाल गुप्त - (20वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) - फुटकर छंद

88. माधवानन्द - (1925-1975) - भजन

89. बद्रीदास - (1950-1951) - भजन

90. जगमालदास - (1955-1960) - आरती

91. कुम्भाराम जी पूनिया - (1937-1995) - निर्वेद ज्ञान प्रकाश, पंचयज्ञ, प्रश्नोत्तर मणिभाषा

92. साधु जगदीशराम - (1960-2005) - भजन, साखी, आरती, फुटकर छन्द

93. श्रीरामदास जी गोदारा - (1920-2011) - इन्होंने अनेक रचनाओं का सम्पादन,''[31] प्रकाशन एवं लेखन का कार्य किया था। जिनमें 17 सम्पादित एवं 7 का प्रकाशन है।

इनके इतिरिक्त डॉ. माहेश्वरी ने 36 अज्ञात बिश्नोई कवियों का परिचय भी दिया है। जिनके अनेक हरजस, साखियाँ, कवित्त, छप्पय, डिंगल गीत, स्तोत्र, जम्भस्तुति एवं भजन प्राप्त होते है। इन सबके अतिरिक्त बिश्नोइयों का लोक साहित्य भी प्राप्त होता है जिसका अपना अलग ही महत्त्व है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह ''जांभाणी काव्यधारा'' लगभग पौने पाँच सौ वर्षों तक हिन्दी साहित्य को सिञ्चित करती रही है। यहाँ इन कवियों के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इनमें से कई तो उच्च कोटि के कलाकार हुए हैं। डॉ. हीरालाल माहेश्वरी ने इस काव्यधारा को 'सिद्ध काव्यधारा' कहा है। उनका इस विषय में कहना है - 'इस क्षेत्र में कवि साधक को जिस किसी माध्यम से, किसी प्रकार की, किसी परिमाण में, यदि सिद्धि की उपलब्धि हो जाए, अथवा वह इस हेतु प्रेरित हो, तो उससे सम्बन्धित अभिव्यक्ति सिद्धकाव्य के अन्तर्गत मानी जानी चाहिए।''[32] परन्तु वर्तमान में 'सिद्ध' संज्ञा बौद्धाचार्यों के लिए इतनी रूढ़ हो चुकी है कि इसे किस और के लिए प्रचलित करना सहज कार्य नहीं होगा।

भारतीय धर्म-साधना, समाज-सुधार एवं साहित्य के क्षेत्र में सन्तों का व्यक्तित्व एवं उनका साहित्य महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। उन्होंने अपने समसामयिक समाज को न केवल रूढ़िमुक्त किया था अपितु उसके लिए श्रेय और प्रेम पंथ का निर्माण भी किया था। भारतीय संत परम्परा अत्यन्त प्राचीन है और हिन्दी की संत परम्परा संत नामदेव से आकार ग्रहण करने लगती है। आगे चलकर यह परम्परा अनेक रूपों में आगे बढ़ी। ये सभी धाराएँ बाहरी रूप से ही भिन्न लगती है, तात्विक रूप से उनरमें कोई अन्तर नहीं है, क्योंकि उन सभी का एकमात्र उद्देश्य 'लोकोत्थान' ही था। वस्तुतः सभी संत एक ही ज्ञान गुदड़ी के धागे थे और मध्यकाल

में यह ज्ञान गुदड़ी सारे देश में बिछी हुई थी। ये सन्त उस परमतत्त्व की ओर से इस दुनिया के लोगों को खबरदार करने आए थे। समाज के इन सजग प्रहरियों का व्यक्तित्व भी विलक्षण था। ये सभी वीतरागी महात्मा परोपकारी थे और लोक सेवा व्रत के व्रती थे। ये स्वानुभूत सत्य का उद्‌घाटन करने में अधिक विश्वास रखते थे और दिल रूपी दरिया में डूबकर 'नाम' रूपी रत्न को ढूंढने वाले मरजीवा थे। इनका विशाल एवं उच्च कोटि का साहित्य इन सब तथ्यों का स्वसाक्षी है।

मध्यकाल में जब उन्मादी दावानल धधक रहा था तब देश के संतप्त हृदय पर अपनी वाणी की सुखद बौछार करने वाले बहुत से विरक्त महात्मा राजस्थान की भूमि पर भी अवतरित हुए थे। इनमें से बहुत से महात्माओं ने निर्लिप्त होते हुए भी लोक कल्याण हेतु अनेक पंथ-सम्प्रदायों की स्थापना की थी। राजस्थान के संत सम्प्रदायों में नाथ, जैन, बिश्नोई, जसनाथी, लाल पंथ, दादू पंथ, रामस्नेही, चरणदासी, निरंजनी सम्प्रदाय प्रचलित रहे हैं और ये सभी सम्प्रदाय आज भी किसी न किसी रूप में वर्तमान है। इन सम्प्रदायों के प्रवर्त्तकों ने समय-समय पर आकर तत्कालीन पिछड़ते एवं बिखरते समाज को अपने साधना सिद्धान्त एवं वाणी रूपी टेक का सहारा दिया था। राजस्थान के सभी दिव्य-महात्माओं में गुरु जाम्भो जी का व्यक्तित्व सबसे निराला था। उनके चारित्रिक गुण उन्हें सहज ही अवतारी महापुरुषों की कोटि में पहुँचा देते हैं। उन द्वारा प्रवर्तित बिश्नोई सम्प्रदाय में भी अनेक सिद्ध महापुरुष हुए थे जिन्होंने अपनी स्वानुभूति वाणी से जन-जागरण का भागीरथी प्रयास किया था। संत केसो जी उन्हीं अमूल्य रत्नों में से एक थे। उन्होंने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व के माध्यम से मध्यकाल के उत्तरपक्ष को आलोकित करते हुए संतों के सनातन धर्म को धारण किया था। पुस्तक के अग्राध्यायों में उनके जीवन एवं साहित्य की विवेचना का प्रयास किया जाएगा।

2.2.3.2 काव्य का विकास - बिश्नोई साहित्य के समुचित मूल्यांकन और महत्त्व-दिग्दर्शन के लिए राजस्थानी साहित्य के इतिहास की प्रमुख प्रवृत्तियों के स्वरूप का परिचय देना आवश्यक है। डॉ. माहेश्वरी के अनुसार - मोटे रूप से राजस्थानी साहित्य का काल-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है -

1. विकास काल - विक्रम संवत 1000-1500

2. विकसित काल - विक्रम संवत 1500-1650

3. विवर्द्धन काल - विक्रम संवत 1650-1925

4. अर्वाचीन काल - विक्रम संवत् 1925 से वर्तमान समय तक'[33]

16वीं शताब्दी पूर्वार्द्ध से बिश्नोई साहित्य का निर्माण होना आरम्भ हुआ था और इस साहित्य धारा के कारण राजस्थानी साहित्य के इतिहास में एक नया मोड़ आता है। 'विकसित काल' के मूल में इस साहित्य-धारा का प्रादुर्भाव भी एक एक बड़ा कारण है। आगे 16वीं शताब्दी तक रचित राजस्थान काव्य की प्रमुख धाराओं का परिचय दिया जाता है।

2.2.3.3 काव्य प्रकार - 16वीं शताब्दी तक राजस्थानी काव्य प्रधानत: तीन धाराओं में प्रवाहित हुआ - 1. जैन काव्य, 2. चारण काव्य और 3. लौकिक काव्य। प्रत्येक काव्य धारा अपनी एक विशिष्ट शैली भी द्योतित करती है।

लौकिक काव्य - इस शैली के अन्तर्गत वे ऐहिक, लोक प्रसिद्ध और लौकिक रस-परक रचनाएँ हैं जिनकी गणना किसी अन्य शैली के अन्तर्गत न की जा सके तथा जिनके ज्ञात या अज्ञात रचयिता का व्यक्तित्व, रचना की लोक प्रसिद्धि के कारण सर्वथा लोकीकृत होकर तिरोहित हो गया हो अथवा कृति में ही समाहित होकर रह गया हो। ऐसे काव्यों की भाषा मूलत: बोलचाल की होती है तथा स्थान और समयानुसार परिवर्तित होती रहती है। यह परिवर्तन रूढ़, लुप्त और अप्रचलित प्रयोगों और शब्दों के क्षेत्र में विशेष होता है। इस श्रेणी की रचनाएँ दो क्षेत्रों से अधिक ली गई हैं - प्रेम-शृंगार तथा अध्यात्म। पहले का आधार अनेक लोक-प्रचलित प्रेम कथाएँ तथा दूसरे का पौराणिक कथाएँ हैं। जो मुख्यत: राम, कृष्ण और प्रह्लाद चरित से सम्बद्ध रही हैं। पिछली कोटि की रचनाओं में बिश्नोई कवियों की देन चिर स्मरणीय है। इस शैली की रचनाएँ भी प्रबन्ध और मुक्तक दो रूपों में मिलती हैं। इनमें जन साधारण के दुख-सुख मय जीवन का अनेक विध चित्रण और लोक-संस्कृति का सही निदर्शन मिलता है।

बिश्नोई काव्य की गणना आधुनिक स्वीकृत सगुण, निर्गुण या योग काव्य-धाराओं के

अन्तर्गत पृथक रूप से नहीं की जा सकती। सम्प्रदाय में मान्य विचारधारा इस काव्य की पीठिका है। सम्प्रदाय में दसावतार तो मान्य है किन्तु मूर्तिपूजा का कोई विधान नहीं है। उपासना विष्णु की की जाती है जो निर्गुण ब्रह्म का पर्याय है। नाम-स्मरण इसका श्रेष्ठ उपाय है किन्तु प्रतिदिन घी से हवन करना एक परमावश्यक कृत्य है। भक्ति का स्वर मूलस्वर नहीं है परन्तु नाथ सम्प्रदाय की भांति हठयोग-साधना पर बल नहीं है। नैतिक स्वर इसमें भी मुखर है, पर नाथों की भांति न तो वर्ण व्यवस्था पर आघात किया गया है और न ही गृहस्थ के प्रति उपेक्षा और अनादर का भाव है। आचार-विचार प्रधान कर्ममय जीवन इसकी आधार भूमि है। व्यक्तिनिष्ठ-साधना के साथ लोक-संग्रह का भाव रखते हुए, गृहस्थ जीवन में ही शुद्धाचरण और कर्म करते हुए ज्ञानार्जन और मोक्ष प्राप्ति इसका चरम लक्ष्य है। केवल विचारधारा और साधना के क्षेत्र में ही नहीं, इनके काव्य-प्रयासों का भी अपना वैशिष्ट्य है। इन विशेषताओं से सम्पन्न जीवन दृष्टि और भाव-भूमि पर निर्मित इस काव्य की संज्ञा सिद्ध काव्य है क्योंकि इसकी गणना सगुण, निर्गुण-भक्ति या योग मार्ग में से किसी एक, दो या सभी के अन्तर्गत पृथक रूप से नहीं की जा सकती। इसका अपना पृथक अस्तित्व है। केवल बिश्नोई काव्य ही नहीं, जसनाथी काव्य भी इसी श्रेणी का काव्य है। दोनों सम्प्रदायों की रचनाओं की गणना 'सिद्ध काव्य' के अन्तर्गत है। प्रस्तुत सिद्धकाव्य को बौद्ध सिद्धाचार्यों के 'सिद्ध साहित्य' से तात्पर्य 'वज्रयानी परम्परा के उन सिद्धों के साहित्य से है जो अपभ्रंश दोहों तथा चर्यापदों के रूप में उपलब्ध है और जिसमें बौद्ध तांत्रिक सिद्धान्तों को मान्यता दी गई है।' इसमें का 'काव्य' शब्द भी उसमें के 'साहित्य' शब्द से पार्थक्य द्योतित करता है।

''प्रवृत्ति और वर्ण्य-विषय की दृष्टि से यह साहित्य इस प्रकार है :

1. जाम्भाणी रचनाएँ : ये दो प्रकार की हैं - क. जाम्भोजी विषयक और ख. सम्प्रदाय विषयक।''[34]

क. जाम्भोजी विषयक रचनाओं में कई (अ) उनके जीवन चरित से और कई (आ) उनकी महिमा-वर्णन से सम्बन्धित हैं। जीवन चरित विषयक रचनाएँ भी दो प्रकार की हैं, एक तो आंशिक रूप से सम्बन्धित और दूसरे पूर्ण रूप से सम्बन्धित। दूसरे प्रकार के अन्तर्गत एक

श्रेणी की रचनाएँ तो वे हैं जिनमें मुख्य कार्यों, घटनाओं आदि का थोड़ा सा वर्णन अथवा नामोल्लेख मात्र किया गया है, जैसे कथा परसिघ, कथा औतार की आदि; दूसरी श्रेणी की रचनाओं में इनका विस्तृत रूप में वर्णन है, जैसे जम्भसार में।

जम्भ महिमा विषयक रचनाओं में एक तो वे हैं, जिनमें उनकी महिमा, गुण, आने का कारण, कार्य, प्रभव, विशेषता, देन आदि का वर्णन है और दूसरी वे जिनमें उनके प्रति आत्म-निवेदन, भावोद्‌गार अथवा स्तुति या आरती की गई है।

ख. सम्प्रदाय विषयक रचनाएँ भी दो प्रकार की हैं - एक वे जिनमें विशिष्ट स्थान, बलिदान, कार्य, घटना, कथा आदि का उल्लेख या वर्णन किया गया है तथा दूसरी वे जिनमें तेतीस कोटि जीवों के उद्धार तथा चारों युगों में विष्णु-अवतार और आगमन विषयक साम्प्रदायिक मान्यता आदि का वर्णन किया गया है। वील्होजी कृत कथा धड़ाबन्ध, केसोजी कृत कथा विगतावली आदि ऐसी रचनाएँ हैं।

2.2.2.4 जाम्भोजी का स्थान एवं महत्त्व - बिश्नोई पंथ के साहित्य में जाम्भोजी के साहित्य का विशेष महत्त्व है। जाम्भोजी विषयक साहित्य भी पर्याप्त है। इसमें बिश्नोई पंथ की मान्यताएँ ही प्रतिबिम्बित होती हैं। जाम्भोजी से सम्बन्धित प्रबन्ध और मुक्तक रूप में प्रचुर साहित्य का निर्माण किया गया है। मुक्तक रचनाओं में तो अनेक प्रकार से उनके प्रति भावोद्‌गार प्रकट किए गए हैं। ऐसी रचनाओं का महत्त्व किसी भी सन्त और भक्त कवि के अपने आराध्य के प्रति लिखे गए गेय पदों से कम नहीं है। भेद केवल आराध्यों के भिन्न होने में ही है। और यदि सम्प्रदाय का स्वरूप ध्यान में रखें, तो यह भेद भी नहीं मालूम होगा। ऐसी प्रबन्ध रचनाओं में सर्वत्र श्रेष्ठ काव्य के लक्षण मिलते हों सो बात नहीं है। अनेक स्थलों पर ये पद्यात्मक वार्त्ताएँ सी प्रतीत होती हैं। ''कहीं-कहीं साम्प्रदायिक मान्यताओं, कर्त्तव्याकर्त्तव्य-निरूपण और उपदेशों आदि का उल्लेख-आकलन भी किया गया है। ऐसे स्थल काव्य की परिधि में नहीं आते किन्तु इनके अतिरिक्त जहाँ विभिन्न मानवीय भावनाओं, सामूहिक मनोवृत्ति, विशेष-मानसिक अवस्था, स्थिति, घात-प्रतिघात या सहज जीवन की रागात्मक मनोवृत्तियों का चित्रण हुआ है, वहाँ काव्य-रस भी वर्तमान है। ऐसी बहुत सी रचनाएँ

ऐतिहासिक आख्यान-काव्य हैं।''[35]

इसके अतिरिक्त इनका महत्त्व इन कारणों से भी है :-

1. इनमें जन साधारण का विशेषत मरु-प्रदेश के कृषक समाज का अनेक रूपों में, अनेक विध चित्रण किया गया है जो अन्यत्र दुर्लभ है। प्रवर्तक के प्रति इतने विशाल साहित्य का निर्माण भी विशेष ध्यान आकृष्ट करता है।
2. तत्कालीन ऐसे समाज में प्रचलित विश्वास, मान्यता, रीति-नीति, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा आदि के परिचय के लिए।
3. विभिन्न राजपुरुषों के व्यक्तिगत जीवन, विचार और परिस्थिति की जानकारी के लिए।
4. जाम्भोजी के व्यक्तित्व, उपदेश और सबदवाणी के भाव-स्पष्टीकरण के लिए।
5. लोक संस्कृति के स्वरूप-निदर्शन के लिए।
6. तत्कालीन राजस्थानी साहित्य में प्रवहमान भावधाराओं को सम्यक् रूप से समझने के लिए एक सुदृढ़ पीठिका के रूप में।
7. जन साधारण के जीवन के अनेक पहलुओं से सम्बन्धित लोक प्रचलित विशिष्ट शब्दावली, उक्तियों तथा बोली आदि के लिए।
8. ऐतिहासिक आख्यानों की परम्परा में।
9. दोहे-चौपाई बद्ध प्रबन्धात्मक काव्य-रूप परम्परा में।
10. कतिपय ऐतिहासिक तथ्यों की महत्त्वपूर्ण जानकारी अथवा पुष्टि के लिए और
11. विभिन्न भौगोलिक स्थानों की जानकारी के लिए।

ध्यातव्य है कि ऐसी बिश्नोई रचनाओं में जैन रचनाओं की भांति पिष्टपोषण नहीं है और यह इनकी बड़ी विशेषता है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक कवि की रचना एक दूसरे की पूरक है। कथा-विशेष और प्रसंग विशेष पर भिन्न-भिन्न कवियों ने गतानुगत और एक सी रचनाएँ न करके भिन्न-भिन्न कथाओं और प्रसंगों पर की है जो समग्र रूप में एक दूसरे की पूरक हैं। विभिन्न कवियों द्वारा लिखे जाने के कारण प्रत्येक में कुछ न कुछ नवीनता और

सरसता।

"अध्यात्म साधना, धर्म, ज्ञान, नीति और लोकोत्थान परक रचनाओं में सर्वत्र नीरस प्रसंगों की अवतारणा नहीं है। इसमें जहाँ मानव हृदय मुखरित हुआ है, वहाँ काव्य सौन्दर्य भी विद्यमान है। अध्यात्म-क्षेत्र की प्राय: सभी रचनाओं में भक्ति रस (या सिद्ध रस) की सरिता प्रवाहित होती दिखाई देती है। हरजी आदि कवियों की मन से सम्बन्धित रचनाएँ तो अत्यन्त चित्ताकर्षक एवं भावपूर्ण हैं। इस श्रेणी की रचनाओं में धर्म और ज्ञान-निरूपण विषयक प्रसंग, शुष्क और पद्यबद्ध उपदेश मात्र हैं, इनको काव्य कोटि के अन्तर्गत नहीं लिया जा सकता। किन्तु ऐसी रचनाओं की संख्या अधिक नहीं है। उल्लेखनीय है कि बिश्नोई कवियों ने केवल नीति और उपदेश के लिए रचनाएँ न करके अधिकांशत: कथ्य या प्रसंग विशेष के स्पष्टीकरण के लिये और वह भी अप्रस्तुत रूप में की है। जैन कवियों की नीति उपदेशात्मक रचनाओं से ये किंचित भिन्न रूप में प्रस्तुत की गई है।"[36]

ऐसी रचनाओं की वर्णन सामग्री परम्पराभुक्त न होकर, दैनंदिन लोक-जीवन के व्यवहृत सामग्री है। इससे भाव सहज ही बोधगम्य होता, और पाठक अनजाने ही कवि मानस से आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करता है। उनका प्रभाव भी शीघ्र होता और स्थायी रहता है। परमानन्द जी बणियाल की रचनाएँ इस सम्बन्ध में विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। ऐसी रचनाओं में (साखियों में भी) वीर काव्यों में विशेषत: प्रयुक्त काव्य-रूढ़ियों का प्रचुर उपयोग किया गया है। वीर जब रणक्षेत्र में वीरता पूर्वक लड़ता हुआ प्राण त्यागता है तो वह स्वर्ग में जाता है, जहाँ अप्सराएँ उनका पति रूप में वरण करती हैं। इस रूढ़ि को सत्कर्म करने वाले साधु व्यक्ति के लिये लागू किया गया है।

क. राजनैतिक क्षेत्र में महत्त्व - बिश्नोई साहित्य का राजनैतिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। सामान्यत: इतिहास में राजाओं के राजनीतिक जीवन का ही लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाता है, उनके जीवन से संबंधित अन्य इतर बातों का बहुत ही कम उल्लेख मिलता है। नाम तो उन्हीं के आते हैं जो या तो गद्दी पर बैठते हैं या इतिहास में उल्लेखनीय कार्य करते हैं। जाम्भाणी साहित्य के इस क्षेत्र में निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में विशेष रूप से पता

चलता है -

1. कतिपय नवीन घटनाओं और तथ्यों का,
2. पुराने तथ्यों और घटनाओं पर नवीन प्रकाश,
3. कतिपय प्रचलित मान्यताओं का खंडन, नई की स्थापना
4. राजपुरुषों के व्यक्तिगत जीवन, सम्बन्ध, विश्वास और विचार,
5. राज्य विशेष में हुई छोटी-छोटी घटनाओं का,
6. अनेक धारणाओं के संबंध में पुनर्विचार की आवश्यकता।

इस सम्बन्ध में सिद्ध-कवियों के कथन विश्वसनीय माने जा सकते हैं, क्योंकि न तो वे राज्याश्रित थे और न ही राज-स्तुति करना उनका उद्देश्य था। उन्होंने तो जैसी घटना देखी या परम्परा से सुनी-पढ़ी, उसका संदर्भ-विशेष में संकेत उल्लेख किया है। उनके कथन ख्यातों से अधिक विश्वसनीय और मूल्यवान हैं। उपर्युक्त कथन के उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित बातें द्रष्टव्य हैं :-

1. राठौड़ों का अजमेर के मल्लूखां से, टोडा ने नेतसी सोलंकी को छुड़ाना। इतिहास ग्रन्थों में वरसिंह को छुड़ाना लिखा है।
2. वरसिंह द्वारा राव को संवत् 1519 में 'देसोटा' दिया गया था। इसकी पुष्टि बाँकीदास की ख्यात से भी होती है।
3. बीकानेर-राजघराने की पूजनीक चीजों में एक "बैरीसाल नगाड़ा" संवत् 1526 में जाम्भोजी ने जोधाजी को दिया था।
4. नारनौल युद्ध के समय संवत 1583 में बीकानेर के राव लूणाकरण अपने कुँवर जैतसी से अप्रसन्न थे।
5. बीकानेर में राठौड़ों की राज्य-स्थापना से पूर्व इस प्रदेश में फैले हुए मोहिलों के प्रभाव को ठीक से लक्ष्य नहीं किया गयां।
6. जोधपुर के राव सांतल के बारह विवाह तथा उनके पुत्र होने की पुष्टि।

7. राजस्थान के तत्कालीन राजाओं से जाम्भोजी के संपर्क और उनके प्रभाव का इतिहास ग्रन्थों में नामोल्लेख तक नहीं है।

8. मेड़ता पर मुसलमानों का हमला हआ था जिसमें राव दूदा विजयी हुए।

9. राठौड़ों में मेड़तिया राठौड़ों पर जाम्भोजी का सर्वाधिाक प्रभाव रहा है और इनमें अब भी उनकी मान्यता बहुत है जिसकी पुष्टि इन बातों से होती है -

   क. मेड़तिया राठौड़ अपने विवाह में प्राय: जाम्भोजी का एक भगवाँ प्रतीक रखता है। या तो वह अपनी पगड़ी के एक सिरे का कोना तिकोने रूप में भगवाँ रंगा कर और उसको सिर के ऊपर दीखता हुआ रखकर, अथवा गंठजोड़े वाले कपड़े के एक कोने को उसी रूप में भगवाँ रंगा कर रखता है।

   ख. अपनी सीमा में न तो हरिण को मारते और न ही मारने देते हैं। इस प्रकार बिश्नोइयों में मान्य जीव-हत्या सम्बन्धी नियम का वे पालन करते हैं।

   ग. वे बिश्नोईयों को अपना गुरु भाई मानते हैं।

10. जैसलमेर क रावल जैतसो ने संवत् 1570 में जैतसमंद तालाब की प्रतिष्ठा पर जाम्भोजी को बुलाया था और उस अवसर पर कन्यादान भी किया था। उनकी आर्थिक स्थिति और श्रद्धाभावना का भी पता चलता है।

11. बीकानेर के महाराजा रायसिंहजी ने सम्भवत: नवीन किले बनवाने हेतु अर्थ-प्राप्ति स्वरूप नये कर भी लगाये थे।

12. जोधपुर के महाराजा अभयसिंहजी की आर्थिक स्थिति ठीक नहीं थी।

13. दिल्ली के बादशाह सिंकदर लोदी से जाम्भोजी मिले थे और उसको ज्ञानोपदेश दिया था।

14. बीकानेर के राव लूणकरणजी जाम्भोजी के शिष्य थे किन्तु युद्ध और विजय के संबंध में वे उनकी बात नहीं मानते थे। नारनौल के युद्ध में वे कुँवर जैतसी को साथ नहीं ले गये थे, उसके माँगने पर उन्होंने घोड़ा भी नहीं दिया था। "भाटे लेने" का प्रसंग अन्यत्र करणजी से जोड़ा गया है।

15. जोधपुर के कुँवर मालदेव, संवत् 1584 में मूलो पुरोहित की प्रेरणा से लोहावट साथरी में जाम्भोजी से मिले थे।

16. सोलहवीं शताब्दी में मरुप्रदेश का सर्वाधिक प्रचलित नाम 'बागड़ देश' था।''[37]

अर्द्ध-ऐतिहासिक - गोपीचन्द और भर्तृहरि विषयक रचनाओं की गणना इस कोटि के अन्तर्गत है। हरिराम और कालू की एतद् विषयक रचनाएँ तो बहुत ही लोक-प्रसिद्ध हुई। परिवर्तित परिवर्द्धित रूप में उनका लोक में गाया जाना इसका द्योतक है

ख. सांस्कृतिक महत्त्व - मनुष्य के लौकिक-पारलौकिक सर्वाभ्युदय के अनुकूल आचार-विचार का नाम संस्कृति है जिसका आधार शास्त्र या धार्मिक विश्वास होते हैं। बिश्नोई साहित्य वह दर्पण है जिसमें विगत साढ़े चार सौ वर्षों के मरु देशीय सांस्कृतिक स्वरूप का प्रतिबिम्ब देखा जा सकता है। इसमें अनायास और सहज रूप में, जन साधारण के जीवन और विविध पहलुओं का समग्रता में जितना समावेश है उतना पूर्व लिखित शेष शैलियों के सिद्धेतर साहित्यों में नहीं। कारण यह है कि उनमें एक विशिष्ट समाज, वर्ग, कार्य, अवसर, पक्ष आदि का उद्घाटन चित्रण ही मुख्यत: किया गया है, जिसमें जीवन की इकाइयाँ अधिक मुखर हैं। जन साधारण का सम्पूर्ण जीवन उनकी परिधि में कम ही आया है।

इस प्रकार बिश्नोई पंथ, समाज एवं साहित्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण साहित्य है। जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य की महान देन है। अनेक दृष्टियों से उसका स्वतंत्र, पारम्परिक महत्त्व है। अन्तत: उसका लक्ष्य मनुष्य है। वह मनुष्य को पशु सामान्य धरातल से उठाकर सही अर्थों में मनुष्य बनाने तथा प्राणी मात्र के प्रति संवेदनशील बनाने का महत् प्रयास है। ऐसा साहित्य बहुआयामी होता है। यह बात बिश्नोई साहित्य ने निश्चित रूप से स्पष्ट की है।

संदर्भ

1. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी, बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, पृ. 42
2. वही, पृ. 42
3. डॉ. गौरी शंकर ओझा, जोधपुर राज्य का इतिहास, खण्ड 1, पृ. 41

4. साहब राम जी राहड़ - जंभसार, पृ. 1-5
5. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, हिन्दी संत परम्परा और संत केसो, पृ. 47
6. सूर्य शंकर पारीक, जाम्भोजी की वाणी, पृ. 42
7. वही, पृ. 56
8. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, हिन्दी संत परम्परा और संत केसो, पृ. 57
9. सूर्य शंकर पारीक, जाम्भोजी की वाणी, पृ. 49
10. डॉ. किशना राम बिश्नोई, गुरु जंभेश्वर : जीवन और साधना, पृ. 30
11. डॉ. हीरा लाल माहेश्वरी, जाम्भो जी : बिश्नोई सम्प्रदाय और साहित्य, पृ. 317
12. डॉ. किश्ना राम बिश्नोई, गुरु जंभेश्वर : जीवन और साधना, पृ. 102
13. रामनाथ शर्मा, नीतिशास्त्र रूपरेखा, पृ. 15
14. डॉ. किश्ना राम बिश्नोई, गुरु जंभेश्वर : जीवन और साधना, पृ. 116
15. डॉ. किशना राम बिश्नोई, गुरुजम्भेश्वर : विविध आयाम, पृ. 148
16. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, हिन्दी संत परम्परा और संत केसो, पृ. 16
17. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी (हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. डॉ. नगेन्द्र) पृ. 101
18. वही, पृ. 102
19. वही, पृ. 217
20. वही, पृ. 219
21. दिनेश चन्द्र शुक्ल, राजस्थान के प्रमुख संत एवं लोकदेवता, पृ. 36
22. डॉ. पेमाराम, मध्यकालीन राजस्थान में भक्ति आन्दोलन, पृ. 36
23. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पंथ का इतिहास, पृ. 19
24. बस्ता नं. 20 फाइल नं. 16, पृ. 55, रा.रा.अ. बीकानेर
25. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पंथ का इतिहास, पृ. 43
26. स्वामी ब्रह्मानन्द, श्री जम्भदेव चरित्रभानु, पृ. 41
27. स्वामी ब्रह्मानन्द, बिश्नोई धर्म विवेक, पृ. 56
28. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, हिन्दी संत परम्परा और संत केसो जी, पृ. 56

29. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, प्रथम भाग, पृ 434
30. डॉ. कृष्णलाल बिश्नोई, गुरु जाम्भोजी एवं बिश्नोई पंथ का इतिहास, पृ. 116
31. रजनी बेनीवाल, जाभाणी संत कवि साहब राम जी राहड़ (जाभाणी साहित्य : विविध आयाम), पृ. 209
32. डॉ. सुरेन्द्र कुमार, हिन्दी संत परम्परा और संत केसो जी, पृ. 62-65
33. डॉ. हीरालाल माहेश्वरी, जाम्भोजी विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य, प्रथम भाग, पृ 965
34. वही, पृ 971
35. वही, पृ. 978
36. वही, पृ. 979
37. वही, पृ. 983-984